

प्रश्न1. भाषा को परिभाषित करते हुए उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख संक्षेप में कीजिए।  
उत्तर मनुष्य अकेला नहीं रह सकता, उसे अपना जीवन बिताने के लिए दूसरों की आवश्यकता पड़ती है। यह आवश्यकता समाज का निर्माण करती है और समाज में रहने के लिए मनुष्य को एक-दूसरे से बातचीत करनी पड़ती है। बातचीत के लिए भाषा की आवश्यकता होती है। भाषा के बारे में **डॉ० हरदयाल बाहरी** कहते हैं –

“भाषा जीवन का प्रमुख अंग है, क्योंकि भाषा के बिना जीवन और जगत का कोई कार्य नहीं चलता। भाषा मानव जीवन की समस्त गतिविधियों का मूलाधार होती है।”

सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य अपने मन में उठे हुए भावों और विचारों को एक-दूसरे पर प्रकट करना चाहता है। इस चाहत की पूर्ति हेतु उसे भाषा को स्वीकार करना पड़ता है। वस्तुतः भाषा वह साधन है जिसके सहारे मनुष्य अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करता हुआ दूसरे तक पहुँचाता है। मानव के विकास के साथ-साथ भाषा का भी विकास हुआ। मानव-शरीर में भाषा एक दैवी अंश के समान है, जो इस सृष्टि में केवल मनुष्य को ही प्राप्त है। प्राचीन काल में जब मनुष्य ने जब भाषा का प्रयोग करना नहीं सीखा होगा तब वह अपने विचारों के आदान-प्रदान के लिए संकेतों का सहारा लेता रहा होगा। जैसे-जैसे मनुष्य का जीवन में परिवर्तन आए वह आदिम अवस्था को छोड़कर धीरे-धीरे सभ्य बनने लगा तभी से भाषा में भी परिवर्तन आये शुरू हो गए होंगे तब भाषा संकेत के बजाए बोली में परिवर्तित हो गई होगी।

इस प्रकार समस्त विश्व में अपने हृदयगत भावों को वाणी रूप में सार्थक मौखिक अभिव्यक्ति के लिए मनुष्य ने जिस साधन का उपयोग किया, उसे सामान्यतः भाषा कहा गया।

#### “भाषा” शब्द के विभिन्न अर्थ

“भाषा” शब्द संस्कृत की “भाष” धातु से बना है जिसका अर्थ है— बोलना या कहना। अर्थात् भाषा वह है जिसे बोला जाय। भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से हम सोचते हैं तथा अपने विचारों को व्यक्त करते हैं। भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित, यादृच्छिक, ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा समाज-विशेष के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। जीवन में व्यवहार करने पर भी “भाषा” शब्द का अर्थ बतलाना उतना सरल नहीं जितना की विचार करने पर भाषा का प्रयोग अनेक अर्थों में होता है। इन्हें निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है—

1. **भाषा का औपचारिक प्रयोग** :- भाषा विचारों की वाहिका होती है। वक्ता और श्रोता वर्णमयी या ध्वन्यात्मक भाषा द्वारा पारस्परिक अभिव्यक्ति या विचार विनिमय करते हैं। तथा एक दूसरे के अभिप्राय को समझते हैं। उस अभिप्राय या भावभिव्यक्ति को हम भाषा की संज्ञा दे देते हैं। इस दृष्टि से पशुओं आदि की बोली (जैसे बन्दरों की भाषा, चिड़ियों की, मधुमखियों की आदि) इंगित (जैसे-सिर हिलाना हाँ या ना में अर्थ को सूचित करना, नेत्रों से ईशारेबाजी आदि) संकेत चिह्न या सांकेतिक भाषा—(रेल्वे का सिग्नल, चौराहें पर लगी बत्तियाँ आदि)।

इस प्रकार अव्यक्त बोली, इंगित तथा संकेत आदि के द्वारा भले ही भावों की अभिव्यक्ति हो जाती है परन्तु उनके लिए भाषा शब्द का प्रयोग औपचारिक रूप में ही हो जाता है। मूल रूप से भाषा का प्रयोग “व्यक्त वाक” के लिए होता है और व्यक्तक वाक ही वर्णनात्मक मानव भाषा ही है।

2. **मानव मात्र की भाषा** :- इसके सीमित अर्थ में “भाषा” का अर्थ मानव मात्र की भाषा है। मानव चाहे किसी भी देश का नागरिक हो किसी की जाति का हो या किसी भी गाँव का हो इस अर्थ में मनुष्य मात्र द्वारा प्रयुक्त “व्यक्त वाक”

को ही भाषा कहा जाता है। चाहे भाषा में कितनी भी विभिन्नता क्यों न हो लेकिन पशु-पक्षियों द्वारा की गई अभिव्यक्ति इसके अंतर्गत नहीं आती है।

3. **देश-विदेश की भाषा** :- भाषा का संतुलित अर्थ तब हमारे सम्मुख आता है जब हम इसका प्रयोग किसी भू-भाग के लिए मनुष्य द्वारा की गई, अभिव्यक्ति के रूप में भाषा के लिए करते हैं। इस रूप में भाषा का अर्थ होता है-हिन्दी, जर्मन, अंग्रेजी, फ्रेंच आदि भाषाएँ।
4. **व्यक्तिगत भाषा** :- भाषा शब्द का अर्थ उस समय सर्वाधिक संकुचित हो जाता है जब इसका प्रयोग किसी व्यक्ति विशेष के लिए किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति और उनके व्यक्तिगत गुण एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। साथ ही वाद्य यन्त्र और श्रवण यन्त्र भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इस कारण प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार ही एक शब्द का अर्थ अलग अलग रूप में ग्रहण करते हैं जैसे (लेखक या व्यक्ति की शैली में विभिन्नता) इस प्रकार भाषा शब्द का अर्थ व्यक्तिगत भाषा भी है।
5. भाषा विज्ञान की दृष्टि से :- भाषा विज्ञान में जिस भाषा का जिक्र है, वह सांकेतिक आदि से भिन्न मानवीय व्यक्त वाणी है। व्यक्त वाणी में जिसकी अभिव्यक्ति की जाती है उसे भाषा कहते हैं। मुख्य रूप से भाषा शब्द से मानवीय व्यक्त वाणी को ही ग्रहण किया जाता है और इसके द्वारा सूक्ष्म मानवीय भावों को प्रकट किया जाता है।

### **भाषा की विभिन्न परिभाषाएँ**

भाषा विज्ञान की अध्ययन प्रणाली के अंतर्गत भाषा का सर्वाधिक महत्व है। इसी महत्व के कारण भाषा की परिभाषाएँ की गई हैं। विद्वानों ने भाषा की परिभाषा अनेक प्रकार से दी है। अभी तक भाषा की कोई सर्वसम्मत परिभाषा सामने नहीं आई है क्योंकि भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। विद्वानों ने भाषा की परिभाषाएँ अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत की हैं। कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

भारतीय विद्वानों के अनुसार भाषा की परिभाषा इस प्रकार है -

- (1) भाषा के सुप्रसिद्ध वैयाकरण महर्षि पंतजलि ने अपने महाभाष्य में भाषा का लक्षण करते हुए लिखा है। -  
“ जो वाणी वर्णों में व्यक्त होती है उसे भाषा कहते हैं।”
- (2) कामता प्रसाद गुरु के अनुसार - “भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली-भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टता समझ सकता है।”
- (3) डॉ० श्याम सुन्दर दास के अनुसार - “मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं।”
- (4) भाषा रत्न नलिनी मोहन सान्याल के शब्दों में- “अपने स्वर को विविध प्रकार से संयुक्त तथा विन्यस्त करने से उसके जो-जो आकार होते हैं उनका संकेतों के सदृश व्यवहार कर अपनी चिन्ताओं को तथा मनोभावों को जिस साधन से हम प्रकाशित करते हैं उस साधन को भाषा कहते हैं।”
- (5) दुलीचन्द के मतानुसार - “हम अपने मन के भाव को प्रकट करने के लिए जिन सांकेतिक ध्वनियों का उच्चारण करते हैं उन्हें भाषा कहते हैं।”
- (6) बाबूराम सक्सेना जी के अनुसार - “जिन ध्वनि-चिहनों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है। उसे समष्टि रूप से भाषा कहते हैं।”

- (7) डॉ० मंगलदेव शास्त्री जी के अनुसार – “भाषा मनुष्य की उस चेष्टा या व्यवहार को कहते हैं जिससे मनुष्य अपने उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों से किए गए वर्णात्मक या व्यक्त शब्दों के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।”

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार भाषा की परिभाषाएँ

Language is the expression of human thought by means of speech sound and articulate sound. A.A. Gardner

अर्थात् भाषा मानवीय ध्वनि संकेतों द्वारा मानवीय विचारों की अभिव्यक्ति है।

इसी प्रकार हैन्डरी स्वीट की परिभाषा भी महत्व रखती है—

Language may be defined as the expression of thought by means of speech sound.

अर्थात् ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है।

- (3) प्राचीन ग्रीस के प्रसिद्ध दार्शनिक और सौन्दर्यशास्त्री प्लेटो भाषा और विचार में बहुत सूक्ष्म अन्तर मानते हुए भाषा की परिभाषा बताते हैं—

“विचार आत्मा की मूक या अध्वन्यात्मक बातचीत है पर जब ध्वनि का रूप धारण कर ओठों से प्रकट होती है उसे भाषा कहते हैं।”

- (4) सबसे पहले ए. एच. गार्डिनर ने अपनी पुस्तक— "Speech and Language" में भाषा की परिभाषा दी है—

The common definition of speech is the use of articulate sound symbols for the expression of thought.

अर्थात् “विचार की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों के व्यवहार को भाषा कहते हैं।”

- (5) गुणे के अनुसार – “ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा भावों तथा विचारों की अभिव्यक्ति ही भाषा है।”

- (6) जेस्परसन के अनुसार – “मनुष्य का मस्तिष्क विचार प्रकट करने के लिये ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग करता है जिन्हें भाषा की संज्ञा दी जाती है।”

- (7) प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक वेन्ड्रेज या वेन्ड्रेज के अनुसार— “भाषा एक तरह का चिह्न या प्रतीक है जिनके द्वारा मानव अपने विचार दूसरों पर प्रकट करता है। ये प्रतीक कई प्रकार के होते हैं जैसे— नेत्र ग्राह्य कर्ण ग्राह्य और स्पर्श ग्राह्य ।

उपर्युक्त परिभाषाओं के बाद यह आसानी से कहा जा सकता है कि भाषा की परिभाषा करना बड़ा कठिन है। फिर भी भाषा विज्ञान की दृष्टि से हम भाषा विज्ञान की इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं —

“जिन यादृच्छिक तथा विभिन्न अर्थों में रूढ़ ध्वनि संकेतों के द्वारा मनुष्य अपने भावों विचारों को अभिव्यक्त करता है उन्हें भाषा कहते हैं।”

उपरोक्त परिभाषा में जो महत्वपूर्ण तत्व आए हैं, उनके स्वतंत्र विश्लेषण और विवेचन से भाषा को स्वरूप में निम्न तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं —

- (1.) भाषा ध्वनि संकेत है (2.) भाषा यादृच्छिक है (3.) भाषा रूढ़ है।

1. भाषा ध्वनि संकेत है – मनुष्य अपनी वागिन्द्रिय की सहायता से जिन संकेतों का उच्चारण करता है, वे ही भाषा के अन्तर्गत आते हैं।

2. **भाषा यादृच्छिक हैं** – भाषा में प्रयुक्त समष्टियां अर्थात् शब्द सार्थक होते हैं। शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाने वाले अर्थ स्वाभाविक या प्राकृतिक न होकर आरोपित अर्थात् माना हुआ होता है। भिन्न भिन्न देशों में रहने वाले लोग किसी शब्द का एक विशिष्ट अर्थ मान लेते हैं। यही कारण है कि एक ही वस्तु अथवा क्रिया के लिए संसार की विभिन्न भाषाओं से भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग होता है जैसे—

संस्कृत	हिन्दी	मराठी	गुजराती	अंग्रेजी	रूसी	फ्रांसीसी
श्व	कुत्ता	कुत्रा	कुतरो	डॉग	सबका	श्याँ
अश्वः	घोड़ा	घोड़ों	घोड़ो	हॉर्स	लोशज्	शत्हास

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि ध्वनि संकेत यादृच्छिक हैं।

3. **भाषा रूढ़ हैं** – “भाषा एक निश्चित व्यवस्था के आधार पर खड़ी है। प्रत्येक भाषा की व्यवस्था दूसरी से भिन्न होती है। यह अवस्था उस विशिष्ट भाषा की दूसरी से भिन्न होती है।
4. **भाषा एक व्यवस्था** – भाषा में एक व्यवस्था रहती है। शब्दों का व्यवस्थित रूप में प्रयोग ही उसमें सार्थकता उत्पन्न कर देता है।
5. **भाषा एक पद्धति हैं** – जिसमें सुव्यवस्थित योजना है तथा जिसमें कर्ता, कर्म, क्रिया आदि व्यवस्थित रूप से आते हैं और जिसके पद व वाक्य रचना का पालन करना अनिवार्य होता है।
6. भाषा संकेतात्मक हैं – ध्वनियाँ ही केवल संकेतात्मक या प्रतीकात्मक होती हैं।

भाषा की परिभाषा करते हुए डॉ० भोलानाथ तिवारी ने अपने मत रखे हैं—

1. भाषा—विचार विनिमय का साधन है।
2. भाषा का प्रयोग समाज विशेष में होता है जिससे वे बोली व समझी जाती है।
3. भाषा में ध्वनि समूह होते हैं लेकिन उनका भावों से कोई सहजात संबंध नहीं होता
4. भाषा एक व्यवस्था है।

निष्कर्ष :- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भाषा का समाज सापेक्ष रूप ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है। डॉ० लक्ष्मीसागर वाष्णीय के अनुसार— “भाषा समाज में अर्जित वस्तु है। अनुकरण से आती है। बाह्य और भीतर के कारणों एवं स्वभाव के फलस्वरूप भाषा में परिवर्तन होते रहते हैं।”

#### **भाषा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ/विशेषताएँ**

1. भाषा सम्पूर्ण रूप से सामाजिक वस्तु है – मनुष्य सामाजिक और समाजप्रिय प्राणी है। समाजप्रिय होने के कारण सामाजिकों से संबंध या व्यवहार स्थापित करना एक अनिवार्य शर्त है। भाषा का सम्पूर्ण जीवन व समाज से संबंधी है। संक्षेप में, भाषा समाज की, समाज के लिए और समाज द्वारा निर्मित होती है।

डॉ० पीताम्बर सरोदे के अनुसार— “भाषा की उत्पत्ति ही सामाजिकता के निर्वाह के लिए हुई है, दूसरे शब्दों में—भाषा और सामाजिकता का संबंध अन्योन्याश्रित है।”

जिस प्रकार पैदा होने के बाद बच्चे का भाषा के साथ संबंध आता है उसी प्रकार संबंध की निश्चिती में माता—पिता—परिवार—मित्र—गुरु तथा पूरा समाज हाथ, बंटाता है। बच्चे को भाषा देने वाले उपरोक्त सभी अंगों ने परम्परा से ही भाषा का ज्ञान प्राप्त किया है। अधिक, विकसित और शिक्षित समाज की भाषा उन्नत संस्कृत और प्रत्येक प्रकार के भावों और विचारों को व्यक्त करने में सक्षम होती है। “भाषा एक सामाजिक वस्तु है। जिस प्रकार से

बाजार में मूल्य का प्रतीक नोट या सिक्के होते हैं उसी प्रकार समाज में भावों की अभिव्यक्ति के प्रतीक शब्दार्थ होते हैं— प्रो० राजकुमार शर्मा

कहना न होगा की संस्कृत भाषा के क्षेत्र में पाणिनि, पंतजलि, वरदाचार्य पाश्चात्य क्षेत्र में— ब्लूमफील्ड, तारापोर, और हिन्दी भाषा के क्षेत्र में—कामताप्रसाद गुरु आचार्य महावीर प्रसाद, डॉ० धीरेन्द्र आदि जैसे विद्वानों ने प्रशंस्य कार्य करके भाषा को परिनिष्ठित रूप देकर समाज की बहुमूल्य सम्पत्ति बनाया है।

2. भाषा परिवर्तनशील है :- “क्षणे क्षणे यन्नवतामुपेति तदेवरूपं रमणीयता।

जो क्षण-क्षण नवीनता को प्राप्त करें वही वस्तु रमणीक है। भाषा नित्यनूतन रूपधारिणी है। परन्तु यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि उसके परिवर्तन की पूर्णता एक नई भाषा का निर्माण करती है। कहीं-कहीं भाषा को रमणीक रूप वाली नायिका की संज्ञा दी जाती है और कहीं भाषा नव-नव परिवर्तन को भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उसकी विकृति न कहकर उसका विकास कहा जाता है।

महाकवि बिहारी लाल का यह कथन भाषा पर चरितार्थ होता है,

लिखन बैठी जाकी छवी, गहि गहि गरब गरुर।

भए न केते जगत के, चतुर चित्ते कूर।।

बिहारी सतसई

विश्व की प्रत्येक वस्तु और सृष्टि के सभी जीव के समान भाषा भी परिवर्तनशील वस्तु है। परिवर्तन भाषा का प्रधान गुण है। प्रत्येक युग और देश की भाषा अपरिवर्तित रूप में नहीं रही है। भाषा में पाया जाने वाला यह परिवर्तन भाषा के ध्वनि शब्द, वाक्य और अर्थ सभी अंगों में पाया जाता है। शब्दों में कुछ नई ध्वनियाँ आकर जुड़ जाती हैं, कुछ छूट जाती हैं। तो कुछ में विपर्यय का भाव पाया जाता है। स्थान विशेष के कारण भाषा के रूप में स्थित अन्तर स्पष्ट रूप से सामने आता है भाषा का कोई अंश या रूप जब नए परिवर्तित रूप में हमारे सामने समुपस्थित होता है तभी हमें पता चलता कि भाषा में कुछ परिवर्तन घटित हो गया है। भाषा में पाया जाने वाला यह परिवर्तन भाषा में अनायास, अनजाने और सहज स्वाभाविक रूप से चला करता है।

3. जटिलता से सरलता की ओर – भाषा स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर और जटिलता से धीरे-धीरे सरलता की ओर बढ़ती जाती है। इस सम्बन्ध में डॉ० श्यामसुन्दर दास का मत उल्लेखनीय है—

“भाषा प्रारम्भिक काल में जटिल, स्थूल रहती है, धीरे धीरे वह सरल, व्यस्त, सूक्ष्म और सुकुमार होती जाती है।”

यद्यपि अपवादों की कभी नहीं हैं फिर भी इतिहास और विज्ञान एक शिखर पर अनेक हो जाने की साक्षी देते हैं।

4. संयोगात्मक से वियोगात्मक – सर्वप्रथम भाषा में प्रकृति तथा प्रत्यय तत्व का अत्यधिक मिश्रित रूप सामने आता है। पद एवं वाक्य रचना भी अधिक योगात्मक या श्लिष्ट रहती है। भाषा की संयोगात्मक को श्लिष्टता भी कहते हैं। योरोपीय परिवार की गीरू, लैटिन अवेस्ता तथा संस्कृत संयोगात्मक भाषा के अंतर्गत आती हैं वहीं हिन्दी, अंग्रेजी योरोपीय परिवार में विकसित होते हुए भी वियोगात्मक भाषाओं के उदाहरण हैं। संयोगात्मक भाषाएँ वह होती हैं जिनके शब्दों तथा वाक्यों में उपसर्गों और प्रत्ययों का योग रहता है। अयोगात्मक या वियोगात्मक भाषाएँ वह होती हैं

जिनमें उपसर्ग, प्रत्यय आदि जोड़कर शब्द नहीं बनाये जाते अर्थात् शब्दों या वाक्यों के बनाने में उनके रूपों का कोई योग नहीं रहता है।

5. भाषा भाव सम्प्रेषण का साधन है – भाषा के ही माध्यम से मानव अपने भावों और विचारों को दूसरों तक पहुँचाता है। वह अपनी सजीव भावनाओं को बोलकर या लिखकर जितनी कुशलता से व्यक्त करता है उतनी ही कुशलता से अभिव्यक्ति की ओर कोई माध्यम नहीं है।
6. भाषा सामाजिक आत्मोदगार की प्रक्रिया है – भाषा के दो पक्ष हैं– (1) सीखना व (2) बोलना। भाषा शिक्षण भी दो प्रकार से होता है (1) अनुकरण से (2) यत्न साध्य से  
मातृभाषा तो अनुकरण से ही सीखी जाती है। परन्तु अन्य भाषाएँ यत्न साध्य होती हैं।
7. भाषा मानव की अक्षय निधि है – भाषा मानवता की पूंजी है मानव ने आज तक जो सोचा, समझा देखा और अनुभव किया है उसका हो संकलन भाषा के रूप में विद्यमान है। ऋग्वेद ने इसे अमृत की नाभि और देवी की जिह्वा कहा है।  
“ जिह्वा देवनामृतस्य नाभिः।”
8. भाषा सर्वशक्ति सम्पन्न – भाषा विश्व की सबसे महान शक्ति है जो नवीन सृष्टि की रचना कर दे। वह प्राण समाज में चेतना फूंक देती है। ऋग्वेद में इसको वायु के तुल्य सर्वगामी शक्ति बताया है–  
“अहमेव वात इन् प्रवामि आर अभाण भुवनाबि विश्रा”
9. भाषा विराट और विश्वकर्मा हैं– भाषा को ब्रह्म में तुल्य विराट् रूप में मानी गई है। विश्व की सारी भाषाएँ ही उसमें समाहित हो जाती हैं। शतपथ में कहा है–  
“वाग्ने विराट्”
10. भाषा सर्वयापक है – मानव के प्रत्येक कार्य, भाषा द्वारा संचालित है। व्यक्ति–व्यक्ति व्यक्ति–समाज या सभी स्थितियों में मानव का आधार भाषा ही है। ज्ञान–विज्ञान धर्म, दर्शन, आचार–विचार आदि का आधार भाषा है। आचार्य भर्तृहरि ने कहा है कि–  
“इति कतव्ये ता लीके सर्वा शब्द व्याश्रया”
11. भाषा समाज को एकसूत्र में बांधती है – भाषा ही वह समन्वय सूत्र है जो समाज को एक सूत्र में बांधती है तथा सभी को पारस्परिक एकात्मकता की अनुभूति कराती है। ऋग्वेद में भाषा को राष्ट्री और संगमनि कहा गया है। जिसका अर्थ है– राष्ट्र निर्मात्री और संबद्ध करने वाली–  
“ अहं राष्ट्री संगमनी वस्नाम्।”
12. भाषा सर्वोत्तम ज्योति है – भाषा एक सर्वोत्तम ज्योति है क्योंकि यह मानव हृदय के अन्धकार को दूर करने में सहायक है तथा इसी से मानवीय क्रियाकलाप, व्यापार संचालित होते हैं। आचार्य भर्तृहरि ने स्वीकार किया है कि भाषा ज्ञान को प्रकाशित करती है। उसके बिना सविकल्पक ज्ञान संभव नहीं है।
13. भाषा का कोई अन्तिम स्वरूप नहीं – भौतिक वस्तुओं से भाषा का स्वरूप पूर्ण होने वाली वस्तु का स्वरूप अन्तिम बन होता है। परन्तु भाषा तो निरन्तर चलने वाली शाश्वत प्रक्रिया है। किसी भी समय की किसी भी भाषा को अथवा उसके रूप को अन्तिम नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः भाषा की स्थिरता और पूर्णता का एक अर्थ उसके विकास का अवरोध अर्थात् मृत्यु है।

14. भाषा का अर्जन अनुकरणात्मक – अभी तक हमने जाना कि भाषा को व्यक्ति अर्जित कर सकता है। यह एक समाज सापेक्ष होने की बात है, परन्तु मनुष्य उसे उत्पन्न नहीं कर सकता। भाषा को हम अनुकरणों के आधार पर अर्जित करते हैं। जब मनुष्य शिशु रूप में होता है तब वह अर्जन की क्षमता रखता है और वहीं से वह भाषा का अनुकरण अपने माता-पिता की भाषा से करता है। जैसे माता शिशु के समक्ष दूध या पानी जैसे शब्दों का उच्चारण करती है तब शिशु उन्हीं शब्दों को धीरे-धीरे कहने का प्रयास करता है। प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक अरस्तू के शब्दों में। –

“अनुकरण मनुष्य का सबसे बड़ा गुण है। वह (मनुष्य) भाषा सीखने में भी उसी गुण का उपयोग करता है।”

15. प्रत्येक भाषा की एक भौगोलिक सीमा होती है :- प्रत्येक भाषा की अपनी एक भौगोलिक सीमा होती है। अर्थात् प्रत्येक भाषा इतिहास के किसी निश्चित काल से प्रारंभ होकर इतिहास के निश्चित काल तक व्यवहृत होती है उसी प्रकार वह अपनी सीमा के भीतर ही अपना वास्तविक क्षेत्र चुन लेती है। उस सीमा से बाहर उसका स्वरूप थोड़ा या अधिक परिवर्तित हो जाता है, उस सीमा के बाहर किसी पूर्णतः भिन्न भाषा की सीमा शुरू हो जाती है।

निष्कर्ष :- “हर भाषा का स्पष्टतः या अस्पष्टतः एक मानक रूप होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि भाषा की एक निश्चित परिभाषा करना कठिन है। फिर भी यह निश्चित है कि वह अभिव्यक्ति का माध्यम है और उसकी अपनी विशेषताएँ हैं।

प्रश्न 3 भाषा विज्ञान का अभिप्राय समझाते हुए ज्ञान की अन्य शाखाओं से उसका क्या सम्बन्ध है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर भाषा विज्ञान भाषा का विज्ञान है। अर्थात्—

“भाषायाः विज्ञानम् भाषा विज्ञानम्”

भाषा विज्ञान का इतिहास बहुत प्राचीन नहीं है। सापेक्षिक दृष्टि से यह एक अभिनव विज्ञान है। मैक्समूलर ही वह पहला व्यक्ति था जिसने इस विज्ञान के नामकरण की समस्या पर विचार किया था। डॉ० उदय नारायण तिवारी ने लिखा है कि—

“हिन्दी में सम्प्रति फिलाजोजी तथा लिग्विस्टिक्स के लिए एक मात्र शब्द भाषा विज्ञान ही प्रचलित है।”

भाषा विज्ञान का क्षेत्र आजकल विस्तृत होता जा रहा है। उसके वर्तमान रूप को देखने पर वह पाश्चात्य अध्ययन की देन के रूप में ही स्वीकृत है, लेकिन भारत में वैदिक काल से ही भाषा विज्ञान के बीज उपलब्ध होते हैं। पाश्चात्य देशों में भाषा भाषा विज्ञान के विविध नाम प्रचलित हैं। यूरोप में सर्वप्रथम इसे फिलोलोजी (Philology) के नाम से पुकारा। साहित्यिक दृष्टिकोण से भाषा का अध्ययन फिलोलोजी है। आगे चलकर 19वीं शताब्दी में भाषाओं में भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति बढ़ी और यह कंपैरेटिव विश्लेषण से शोभित हुआ। तुलनात्मक अध्ययन पर अधिक ध्यान केन्द्रित होने के कारण यह “कंपैरेटिव फिलोलोजी” (Comparative Philology) कहलाया है। व्याकरण के साथ इसके घनष्टि संबंध देखते हुए इसे तुलनात्मक व्याकरण भी कहा गया। फ्रांस में इस लैगिस्तीक या लिग्विस्टिक्स नाम दिया गया। भाषा विज्ञान की वैज्ञानिकता को स्पष्ट होता देख इसे “साइन्स ऑफ लैग्वेज” कहा गया। आज अधिकांशतः लिग्विस्टिक्स और फिलोलोजी इन नामों से ही यह शास्त्र यूरोप में परिचित है। इन दोनों का अर्थ भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन है।

#### भाषा विज्ञान की परिभाषा

अनेक विद्वानों ने भाषा विज्ञान की परिभाषाएँ दी हैं—

1. डॉ० श्याम सुन्दर दास के अनुसार— “भाषा विज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं जिसमें भाषा मात्र के भिन्न-भिन्न अंगों और स्वरूपों के विवेचन तथा निरूपण किया जाता है।”
2. डॉ० भोलानाथ तिवारी — “भाषा विज्ञान का सीधा अर्थ है—भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषा विज्ञान कहलायेगा।”
3. डॉ० बाबूराम सक्सेना — “भाषा विज्ञान का अभिप्राय भाषा का विश्लेषण करके उसका दिग्दर्शन कराना है।”
4. डॉ० कपिलदेव द्विवेदी— “भाषा विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा का सर्वांगीण विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।”
5. रिलसन — “भाषा विज्ञान भाषा की आन्तरिक रचना के अध्ययन का शास्त्र है।”
6. आर. एच. राबिन्स — “भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन की भाषा को भाषा विज्ञान कहा जा सकता है।”

उपर्युक्त परिभाषाओं से एक ही परिभाषा पूर्ण रूप से सामने आती है जो इन सब परिभाषाओं की निचोड़ है—

“भाषा विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें मानव प्रयुक्त व्यक्त वाक् का पूर्णतया वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।”

### भाषा विज्ञान का अन्य शास्त्रों से संबंध

मानव समाज से संबंध रखने वाला कोई भी ऐसा विज्ञान अथवा शास्त्र नहीं है जिसका संबंध भाषा विज्ञान से न हो। भाषा मानव जीवन की सम्पूर्ण गतिविधियों का मूल आधार है। यही हमें ज्ञान-विज्ञान की गतिविधियों या अनुसंधान में सर्वाधिक मदद करता है। डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है कि— “जब भाषा हमारे जीवन जगत् ज्ञान-विज्ञान आदि के सभी क्षेत्रों में अपना अधिकार रखती है तब भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले भाषा विज्ञान का संबंध ज्ञान विज्ञान की अन्य शाखाओं एवं ज्ञान विज्ञान के प्रतिपादक विविध शास्त्रों से होना स्वाभाविक है।”

इसी प्रकार भोलानाथ तिवारी ने अपनी भाषा-विज्ञान की पुस्तक में लिखा है—“ज्ञान अपने विराटतम रूप में अखण्ड है। तत्त्वतः उसे अलग अलग शास्त्रों तथा विज्ञानों आदि में इस प्रकार नहीं विभाजित किया जा सकता कि एक-दूसरे से पूर्णतः अलग हो। इसीलिए ज्ञान के इस अखण्ड कोश को केवल सुविधा के लिए अलग-अलग विज्ञानों एवं शास्त्रों आदि से विभाजित कर रखा है। इस प्रकार यह अखण्ड ज्ञान का यह विभाजन केवल व्यवहारिक है, तात्विक नहीं।”

इसी घनिष्ठता को ध्यान में रखते हुए भाषा विज्ञान का ज्ञान की कतिपय प्रमुख शाखाओं से संबंध स्पष्ट किया जा रहा है—

1. **भाषा विज्ञान और समाज शास्त्र** — सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति समाज में रहता है और तब भावों का विनिमय भाषा के ही माध्यम से कर पाता है। यह स्पष्ट भी है कि भाषा एक सामाजिक आवश्यकता भी है। समाज शास्त्र में मानव की सामाजिक प्रवृत्ति के साथ-साथ उसके इतिहास का भी वर्णन रहता है। भाषा समाज व्यवस्था की नियामक भी है। भाषा हमें समाज के बहुआयामी पहलुओं से भी परिचित कराती है। भाषा विज्ञान और समाजशास्त्र दोनों का संबंध मानव जाति से ही है। भाषा विज्ञान द्वारा किसी भी विशेष जाति अथवा समाज की भाषा तथा उसकी मनोवृत्तियों के अध्ययन में सहायता मिलती है। देवनाम प्रिय अशोक के समय अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होता था किन्तु “मूर्ख” के लिए आता है। जिस प्रकार दक्षिण भारत में पिल्ले या पिल्लई शब्द आदर पूर्वक लिया जाता है वही हिन्दी में कुत्ते के बच्चे के लिए यह शब्द प्रयुक्त होता है। इस अर्थ भेद और परिवर्तन कारणों के स्पष्टीकरण में भाषा विज्ञान और समाजशास्त्र दोनों एक-दूसरे की सहायक हैं।
2. **भाषा विज्ञान और व्याकरण** — भाषा विज्ञान और व्याकरण दोनों ही शब्द शास्त्र हैं। भाषा विज्ञान व्याकरण का व्याकरण है। व्याकरण की भाषा विशिष्ट और काल विशिष्ट होता है। जबकि भाषा विज्ञान सामान्यतः सभी भाषाओं से जुड़ा होता है। व्याकरण की तुलना में भाषा विज्ञान के नियम व्यापक होते हैं और भाषा विज्ञान और व्याकरण भाषा का ही अध्ययन करते हैं। व्याकरण शुद्ध भाषा की जानकारी के लिए जितना आवश्यक है उतना ही व्याकरणिक नियमों की व्याख्या के लिए भाषा विज्ञान आवश्यक है। इस प्रकार दोनों परस्पर उपकारी हैं व्याकरण केवल “क्या” का ही उत्तर देता है वहीं भाषा विज्ञान क्यों ? कैसे ? कब ? आदि प्रश्नों का उत्तर भी देता है यदि व्याकरण रूढ़िवादी है तो भाषा विज्ञान प्रगतिवादी! व्याकरण का संबंध केवल साहित्यिक मानक भाषा से ही होता है पर भाषा विज्ञान असभ्य, पहाड़ी और आदिवासी लोगों की बोलियों से भी अपने संबंध बना लेता है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि भाषा विज्ञान और व्याकरण में परस्पर घनिष्ठ संबंध हैं। प्रो० राजकुमार शर्मा के अनुसार— “भाषा विज्ञान की नींव व्याकरण की ईंटों से ही भरी जाती है, दोनों में अधिक विरोध नहीं है। प्रत्युत दोनों में परस्पर पूरक भाव हैं।

भाषा विज्ञान को व्याकरण का ही विकसित रूप माना जाता है या व्याकरण का व्याकरण भी कहा जाता है।

3. **भाषा विज्ञान और साहित्य** – भाषा विज्ञान एक विज्ञान है जबकि साहित्य एक कला है। भाषा विज्ञान का संबंध बुद्धि या मस्तिष्क से अधिक है जबकि साहित्य का संबंध हृदय की रागात्मक प्रवृत्ति से है। प्रथम का क्षेत्र व्यापक है क्योंकि उसमें अप्रयुक्त भाषाओं एवं बोलियों का भी अध्ययन होता है। द्वितीय का क्षेत्र सीमित है क्योंकि उसमें मात्र साहित्यिक भाषाओं का ही अध्ययन होता है। इन दोनों में यह अन्तर स्पष्ट है जिस प्रकार भाषा अभिव्यक्ति का साधन है और साहित्य भाषा का स्थायी रूप उसी प्रकार साहित्य भाषा के आधार पर खड़ा है तो भाषा के सुरक्षित रूप की उपलब्धि साहित्य में प्राप्त होती है। यह साहित्य ही की कृपा है कि आज भाषाओं के पारिवारिक विकास के अध्ययन का कार्य भाषा विज्ञान कर सका है। भाषा विज्ञान में जब हम अर्थ परिवर्तन की विविध दिशाओं का अध्ययन करते हैं तो साहित्य ही हमें बतलाता है कि असुर, गवेषण और प्रवीण जैसे शब्द पहले किस अर्थ में प्रयुक्त होते थे और अब उनका अर्थ बदलकर क्या हो गया है ? भाषा विज्ञान का संबंध मस्तिष्क, विचार चिंतन से अधिक है, साहित्य का हृदय, भावना से अधिक है।

डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार— “सच पूछा जाए तो साहित्य ने ही भाषा-विज्ञान के अध्ययन को जन्म दिया है क्योंकि जिस समय पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत के वरेण्य वाङ्मय का अध्ययन किया और उसके रूपों की तुलना ग्रीक, लैटिन, फ्रेंच, जर्मन आदि अंग्रेजी भाषाओं से की, तभी से भाषा विज्ञान का विकास हुआ है। अतः साहित्य भाषा विज्ञान का जनक है।”

4. **भाषा विज्ञान और मनोविज्ञान**— भाषा विज्ञान और मनोविज्ञान दोनों विज्ञान हैं। भाषा विज्ञान भाषा का और मनोविज्ञान मानव के मस्तिष्क का विवेचन करता है। भाषा के मूल में मन ही है। मनोगत भावों और विचारों की वाचिक प्रतिक्रिया भाषा है। जिस प्रकार मनुष्य का मानस अनेक प्रकार की चेष्टाएँ क्रियाएँ और प्रतिक्रियाएँ करता है और यह क्रियाएँ वह जिस भाषा की उत्पत्ति और प्रारंभिक रूप की जानकारी में भी मनोविज्ञान विशेषतः बाल मनोविज्ञान और अविकसित लोगों का मनोविज्ञान हमारी बहुत सहायता करता है। पागलों के मनोवैज्ञानिक उपचार में उनके द्वारा कही गई उलूल-जलूल बातों के विश्लेषण जिसमें ग्रंथियों एवं गुत्थियों का पता लगाया जाता है भाषा विज्ञान का उसमें पर्याप्त सहयोग मिलता है। उसी प्रकार विचारों के विश्लेषण में भी भाषा विज्ञान पर्याप्त सहायता करता है। यही कारण है कि मनोविज्ञान और भाषा विज्ञान भी परस्पर घनिष्ठ संबंध रखते हैं।
5. **भाषा विज्ञान और दर्शन** – दर्शन का क्षेत्र आध्यात्मिक है। इसमें आत्मा-परमात्मा, जीवन मृत्यु आदि का चिन्तन किया जाता है। जीवन और जगत के अन्य अनेक प्रश्नों के भांति ही भाषा का प्रश्न भी पर्याप्त रहस्यपूर्ण है। पंतजलि तथा भर्तृहरि ने भाषापर दार्शनिक दृष्टि से ही विचार किया है। स्फोटवाद का सिद्धान्त शब्द ब्रह्म की कल्पना आदि सभी दार्शनिक क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं।

इसी प्रकार भाषा के संबंध में जो अनेक जिज्ञासाएँ मानव के मस्तिष्क में उत्पन्न होती हैं और जिनका समाधान भाषा द्वारा होता है, वे सब भी दर्शन के अन्तर्गत आते हैं। भारत के ही नहीं वरन् पश्चिम देशों में भी भाषा

पर सर्वप्रथम विचार करने वाले विद्वान दार्शनिक थे। प्लेटो, अरस्तु आदि इस प्रकार भाषा विज्ञान व दर्शन दोनों ने मिलकर भाषा संबंधी प्रश्नों का हल किया।

6. **भाषा विज्ञान और तर्क शास्त्र** – यास्क ने निरुक्त में तर्क शास्त्र की सहायता ली थी इसलिए आज भी भाषा विज्ञान और तर्क शास्त्र के संबंधों की गहनता पर खोज जारी है। भाषा विज्ञान के चार अंग व्याख्या, उत्पत्ति विकास और तुलना में तर्क शास्त्र उपयोगी सिद्ध हुआ। किसी विशेष अर्थ में प्रयुक्त होने वाला शब्द सामान्य अर्थ में कैसे प्रयुक्त होने लगा और सामान्य अर्थ में प्रयोग होने वाले शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में कैसे होने लगा, इसकी खोज तर्कशास्त्र की सहायता से ही की जाती है।
7. **भाषा विज्ञान और शरीर विज्ञान** – भाषा विज्ञान में मुख से उच्चरित ध्वनियों द्वारा भाव या विचारों का अध्ययन किया जाता है। वक्ता से श्रोता तक ध्वनि की जो यात्रा होती है वह भाषा विज्ञान का विषय है और जिस स्थान से होकर जहाँ तक पहुँचती है वह शरीर विज्ञान का विषय है। शरीर विज्ञान के ज्ञान के अभाव में भाषा को योग्य ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता भाषण और श्रवण प्रक्रिया के संबंध में जानकारी पाना शरीर विज्ञान के लिए भी आवश्यक है। इस प्रकार शरीर विज्ञान के परिचय के अभाव में भाषा का पूर्ण ज्ञान होना संभव नहीं। क्योंकि ध्वनन (उच्चारण) और श्रवण भाषा के वह दो अनिवार्य तत्व हैं जिनका संपूर्ण संबंध शरीर विज्ञान से ही होता है।
8. **भाषा विज्ञान और भौतिक शास्त्र** – मुँह से ध्वनि उत्पन्न होने और उसके कानों तक पहुँचने के मध्य ध्वनियाँ लहरों में चलती हैं जो आकाश या आकाश लहरों के रूप में गमन करती हैं। इन लहरों के संबंध में पूरी जानकारी हमें भौतिक शास्त्र से ही प्राप्त होती है। जिस प्रकार अपने मानसिक आधार के कारण भाषा मनोविज्ञान से संबंध रखती है और इस प्रकार भाषा विज्ञान तथा मनोविज्ञान का संबंध बनता है, उसी प्रकार अपने भौतिक आधार के कारण भाषा भौतिक विज्ञान से संबंध रखती है। लेरिस्कोप, काइमोग्राफ, कृत्रिम तालु, एक्सरे आदि से ध्वनियों के अध्ययन में काफी सहायता व सफलता मिली है। सीधे शब्दों में कहा जाए तो ध्वनि विज्ञान को पूर्णतः वैज्ञानिक रूप उपलब्ध करना भौतिकी के द्वारा ही संभव हो रहा है। अतः भाषा विज्ञान एकांगी भाव में भौतिक विज्ञान से सहायता लेता है।
9. **भाषा विज्ञान और भूगोल** – प्रत्येक भाषा का विशिष्ट भूखण्ड में व्यवहृत होती है। उसी वातावरण में उसका निर्माण विकास तथा विस्तार होता है। इसी कारण विभिन्न भू-प्रदेशों की भाषाएँ समान नहीं हैं। मानव भाषा का प्रयोग करता है साथ ही विशिष्ट भौगोलिक परिवेश का निवासी होने के कारण उस पर उस प्रदेश विशेष का पर्याप्त प्रभाव पाया जाता है। साथ साथ उसकी भाषा भी प्रभावित होती है। संसार की हजारों भाषाओं का सीमा निर्धारण इसी भूगोल की सहायता से होता है।
10. **भाषा विज्ञान और इतिहास** – भाषा विज्ञान तथा इतिहास का परस्पर स्वाभाविक संबंध है। पद विकास ध्वनि विकास अर्थ विकास आदि का समझने में इतिहास भाषा विज्ञान का मार्गदर्शन करता है। हिन्दी में विभिन्न विदेशी शब्दों का आगमन कैसे-कैसे और कब-कब हुआ इसका ज्ञान देश के इतिहास द्वारा विदेशियों के आक्रमणों की जानकारी आदि से ही संभव है। इसी भाँति भाषा विज्ञान के अन्तर्गत अनेक प्राचीन भाषाओं के अध्ययन से विभिन्न देश-कालों के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। इतिहास तथा पुरातन संस्कृति के अनेक महत्वपूर्ण अंश हमें आज भाषा विज्ञान की कृपा से ही प्राप्त हुए हैं— प्राचीन मिस्त्री और असीरियन संस्कृति इसके प्रमाण हैं। इतिहास के तीन रूप लेकर यहाँ भाषा विज्ञान से उसका संबंध दिखलाया जा रहा है—

(1) **राजनीतिक इतिहास**— किसी देश में किसी अन्य देश का राज्य होना दोनों ही देशों की भाषाओं को प्रभावित करता है। भारतीय भाषाओं में कई हजार अंग्रेजी शब्दों का प्रवेश तथा दूसरी ओर अंग्रेजी में कई हजार भारतीय शब्दों का प्रवेश भारत की राजनीतिक परतंत्रता या इन दोनों के बीच राजनीतिक संबंध का ही परिणाम है।

(2) **धार्मिक इतिहास** — भारत में हिन्दी-उर्दू समस्या धर्म या सांप्रदायिकता की ही देन है। धर्म के रूप में परिवर्तन का भी भाषा पर प्रभाव पड़ता है। धर्म के कारण ही बहुत सी बोलियाँ अन्धों की तुलना में महत्वपूर्ण होकर भाषा बन जाती हैं धर्म के प्राचीन रूप की गुत्थियों भाषा विज्ञान से सुलझ जाती हैं।

(3) **सामाजिक इतिहास** — सामाजिक इतिहास या सामाजिक व्यवस्था तथा परंपराओं का भी भाषा पर प्रभाव पड़ता है और दूसरी ओर भाषा से भी सामाजिक इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार भाषा विज्ञान तथा सामाजिक इतिहास भी एक-दूसरे के सहायक हैं।

इस प्रकार भाषा विज्ञान और इतिहास का संबंध अन्धोनाश्रित है।

(4) **भाषा विज्ञान और मानव शास्त्र**— मानव के विकास में भाषा का पूर्ण रूपेण सहयोग रहा है। “वाणी” को ईश्वर द्वारा प्रदत्त वरदान माना जाता है। आदि मानव इंगित भाषा का प्रयोग करता है। जैसे-जैसे वह उन्नति के सोपान चढ़ता गया, भाषा भी विकसित होती चली गई। प्रारंभ में सबकी एक भाषा थी अथवा अलग-अलग इसका उत्तर मानव शास्त्र देता है। दूसरी ओर भाषा विज्ञान भी बतता है कि एक समाज की भाषा और दूसरे समाज की भाषा में क्या साम्य है और क्या वैषम्य है।

“भाषा विज्ञान का संबंध मस्तिष्क से है और यह चेतना का प्रतीक है। अतः समस्त ज्ञान विज्ञान इसके हमनशी हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि भाषा विज्ञान का संबंध अनेक शास्त्रों से है। एक अन्य शास्त्र है जो भाषा शिक्षण है उससे भी भाषा विज्ञान का संबंध है—

12. **भाषा विज्ञान और भाषा शिक्षण** — यद्यपि भाषा शिक्षण ओर भाषा वैज्ञानिक का कार्य भिन्न-भिन्न है तथापि भाषा शिक्षण का कार्य किसी भाषा जो चाहें स्वदेशी हो या विदेशी सहज रूप से बोधगम्य बनाना है। आधुनिक युग में भाषा को जो महत्व मिला है उसका श्रेय भाषा के शिक्षकों को है।

निष्कर्ष — संक्षेप में कह सकते हैं कि भाषा विज्ञान का ज्ञान की अन्य शाखाओं से एक बहुत बड़ी सीमा तक संबंध है जिनमें सांख्यिकी, गणित, काव्यशास्त्र, यांत्रिकी आदि सम्मिलित हैं।

### **भाषा विज्ञान के अध्ययन की उपयोगिता**

विज्ञान का अध्ययन केवल भौतिक लाभ के लिए नहीं होता है ज्ञान का अन्यतम और सर्वोत्तम उपयोग है— बौद्धिक जिज्ञासा पिपासा को तृप्त करना। मनुष्य के इतिहास एवं चिन्तन की सुरक्षा भाषा के द्वारा ही संभव हो सकी। भाषा की उत्पत्ति विकास का अध्ययन हमारे मन के अनेक प्रश्नों को शांत करता है। जैसे—

1. भाषा का सम्यक ज्ञान भाषा विज्ञान की उपयोगिता को प्रमाणित करता है।
2. भाषा की शुद्धता और समुचित तथा साधु प्रयोग की जानकारी रखना।
3. समाज संस्कृति और इतिहास की जानकारी पाना भाषा विज्ञान की उपयोगी उपलब्धि है।
4. अनुवाद कार्य **आन्तर भारती** का कार्य है ?
5. लिपि सुधार के साथ ही नई लिपि के प्रश्न को हल करने में भी भाषा विज्ञान सहायता पहुँचाता है।

- .6. उच्चारण विषयक दोषों का निवारण करने व तुतलाहट व हकलाहट में भी भाषा विज्ञान मदद पहुँचाता है।
7. भाषा विज्ञान ने संचार के साधनों को उन्नत कर दुनिया बहुत छोटी बना दी है।
8. प्राचीन ग्रंथों के पाठ संशोधन एवं अर्थ बोध से भी भाषा विज्ञान सहायता पहुँचाता है।

इस प्रकार भाषा विज्ञान साध्य और साधन दोनों रूपों में उपयोगी साबित हुआ है। हमारे लिए भाषा ही अनिवार्य सही अपितु भाषा विज्ञान के इन विविध बहुआयामी उपयोगिता को देखकर तो ऐसा लगता है कि आज के वैज्ञानिक युग में हमारे लिए भाषा विज्ञान की महत्ता अधिक है।

प्रश्न4. भाषा विान के अध्ययन के प्रकार और उसके अंगों पर विस्तार से प्रकाश डालिय।

उत्तर भाषा विज्ञान में भाषा और विज्ञान दो शब्द हैं। पीछे भाषा की व्याख्या की जा चुकी है विज्ञान का अर्थ है किसी वस्तु का क्रमबद्ध ज्ञान। भाषा विज्ञान भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को कहा जाता है। भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन से तात्पर्य है कि उसका भीतरी और बाहरी दोनों दृष्टियों से सम्यक अध्ययन किया जाए। यह अध्ययन कई प्रकार से किया जा सकता है। वर्णात्मक भाषा विज्ञान के द्वारा, ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के द्वारा तुलनात्मक और प्रायोगिक भाषा विज्ञान के द्वारा।

**भाषा और विज्ञान :-** ये दो परस्पर संबंधित शब्द हैं। भाषा का सहारा जिहा है और विज्ञान का मस्तिष्क। मस्तिष्क की क्रियाशीलता जिहा को वाणी प्रदान करती है। जब तक ये दोनों शब्द पृथक पृथक रहते हैं तब तक तो भाषा और विज्ञान के क्षेत्र अलग अलग दिखाई पड़ते हैं किन्तु साथ आते ही अपना घनिष्ठ संबंध जोड़ते हैं। तथा इनकी द्वैतावस्था समाप्त होकर अद्वैतावस्था में बदल जाती है। यह स्पष्ट हुआ कि भाषा का प्रवाह जो दीर्घकाल से अनेक मोड़ों और दरों से होकर चला आ रहा है, उसका वैज्ञानिक अध्ययन भाषा विज्ञान का कार्य है।

**भाषा विज्ञान अध्ययन के प्रकार :-** संक्षेप में भाषा का पूर्ण वैज्ञानिक अध्ययन ही भाषा विज्ञान है और किसी भी विषय का पूर्ण अध्ययन तभी संभव होता है जब हम एक निश्चित प्रक्रिया को अपनाकर उसमें प्रवृत्त होते हैं। भाषा विज्ञान भी किसी भाषा के कारण कार्यमूलक युक्तिपूर्ण विवेचन विश्लेषण के लिए कुछ निश्चित प्रक्रियाओं में बंधकर चलता है। उन्हीं प्रक्रियाओं के आधार पर अभी तक भाषा विज्ञान के अध्ययन के पांच प्रकार हमें उपलब्ध होते हैं—

1. **वर्णनात्मक भाषा विज्ञान :-** जिसमें किसी एक भाषा के किसी एक ही काल के स्वरूप की व्याख्या या वर्णन रहता है। किसी विशेष काल में किसी भाषा में कितनी ध्वनियां थी? पद रचना कैसी थी? वाक्य रचना कैसी थी? आदि—आदि का इसमें विस्तार से वर्णन किया जाता है। इस प्रकार के अध्ययन से हमें उस विशिष्ट भाषा का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है। संस्कृत भाषा का पाणिनीय व्याकरण इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।
2. **ऐतिहासिक भाषा विज्ञान :-** जिसमें किसी एक भाषा का उसके विभिन्न अंगों पद रचना वाक्य रचना आदि के क्रमिक विकास का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार के अध्ययन से हमें किसी भाषा के प्राचीन काल से लेकर आज तक के साहित्यिक असाहित्यिक (बोलचाल) अथवा मृत (प्रयोग बाह्य) आदि रूपों का परिचय मिल जाता है। भाषा के इस प्रकार के ऐतिहासिक अध्ययन में प्राचीन साहित्य पुरातन ग्रंथ तथा शिला लेख आदि सभी हमारे अध्ययन के साधन बन जाते हैं। 19वीं शताब्दी को ऐतिहासिक भाषा विज्ञान का स्वर्ण युग माना जाता है।
3. **तुलनात्मक भाषा विज्ञान :-** जिसमें किन्हीं दो या दो से अधिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। जिन भाषाओं को अध्ययन का विषय बनाया जाता है, उनके विभिन्न अंगों की तुलना किसी एक काल के आधार पर अथवा विभिन्न कालों के आधार पर की जाती है। यद्यपि आधुनिक काल में 18वीं शताब्दी के अन्त में विलियम जोन्स द्वारा इसका सूत्रपात किया गया किन्तु इसका पूर्ण विकास भी 19वीं शताब्दी में हुआ है। उन दिनों भाषा विज्ञान का नाम ही तुलनात्मक भाषा विज्ञान पड़ गया था।
4. **संरचनात्मक भाषा विज्ञान :-** जिसमें भाषा में प्रयुक्त सभी तत्वों का पारस्परिक विशिष्ट संदर्भ में क्रमशः अध्ययन किया निवासी "स्विट्जरलैण्ड" को संरचनात्मक स्कूल से सबद्ध स्विट्जरलैण्ड किया जाता है। पहले जेनेवा स्कूल और उसके पश्चात प्राग स्कूल इस भाषा विज्ञान का केन्द्र रहा है। आजकल पाश्चात्य देशों में इस पर पर्याप्त कार्य हो

रहा है। भाषा के अध्ययन में संरचनात्मक भाषा विज्ञान से गणित के समान ही निश्चित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं। इसी का नाम गठनात्मक भाषा विज्ञान भी है।

### **भाषा विज्ञान का प्रतिपाद्य विषय क्षेत्र या विभाग:**

भाषा विज्ञान की विषयगत परिधि चौड़ाई में इतनी अधिक है कि उसके अर्न्तगत अनेक विषयों का अध्ययन तो समाविष्ट होता ही है साथ ही विविध भाषाओं की व्युत्पत्ति, विकास, ह्रास और परिवर्तन एवं उसके कारण भी विदित हो जाते हैं। भाषा विज्ञान किसी एक विषय का अध्ययन न होकर विविध विषयों का अध्ययन है।

भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन में भाषा विषयक अनेक प्रश्नों पर विचार किया जाता है। इनमें से कुछ नियम ऐसे हैं जो प्रधान हैं और कुछ ऐसे हैं जो गौण हैं। अतः भाषा विज्ञान का क्षेत्र जानने के लिए उसके विविध विषयों का परिचय यहाँ दिया जाता है।

भाषा के प्रमुख अंग और उपों में वाक्य पद, ध्वनि तथा अर्थ आते हैं। इन्हीं के आधार पर भाषा विज्ञान के अर्न्तगत निम्नांकित विषयों का अध्ययन किया जाता है इनका परिचय इस प्रकार है—

1. **प्रोक्ति विज्ञान** :- किसी बात को कहने के लिए प्रयुक्त वाक्यों के उस समुच्चय को "प्रोक्ति" कहते हैं जिसमें एकाधिक वाक्य आपस में सुसंबद्ध होकर अर्थ और संरचना की दृष्टि में एक इकाई बन गये हो। हिन्दी में प्रोक्ति विज्ञान का नामकरण डॉ० भोलानाथ तिवारी ने अपनी पुस्तक भाषा विज्ञान में सुझाया है। अंग्रेजी में एक पुराना शब्द है "डिस्कोर्स"। उसी को अब अंग्रेजी में इस अर्थ का शब्द मान लिया गया है। अर्थ और संरचना आदि सभी दृष्टियों से विचार करने पर प्रोक्ति ही भाषा की मूलभूत सहज इकाई ठहरती है और क्योंकि समाज में विचार-विनिमय के लिए उसी का प्रयोग किया जाता है तथा वाक्य उसी का विश्लेषण करने पर प्राप्त होते हैं, अतः वाक्य मूलतः भाषा की सहज इकाई नहीं हो सकते। जैसे—

"लंका के अत्याचारी राजा रावण ने अयोध्या के राजकुमार राम की पत्नी को उठाकर अपने रथ में बैठाकर ले गया पता चलने पर राम की सेना ने रावण पक्ष पर चढ़ाई कर दी रावण पक्ष के लोग मारे गए। राम ने रावण को बाण मारा और रावण वीरगति को प्राप्त हुआ।"

यह एक प्रोक्ति है जिसमें कई वाक्य हैं, जैसे युद्ध में रावण पक्ष के काफी लोग मारे गए या राम ने रावण बाण मारा आदि। ये सभी वाक्य आपस में सुसंबद्ध हैं।

2. **वाक्य विचार (Syntax)** :- भाषा का प्रधान कार्य विचार-विनिमय है और विचारों का आदान प्रदान वाक्यों के माध्यम से होता है। अतः वाक्य भाषा में सर्वाधिक महत्व की वस्तु है। इस वाक्य के भी दो उपविभाग किए जा सकते हैं— (1) तुलनात्मक (2) ऐतिहासिक वाक्य विचार। तुलनात्मक वाक्य विचार के अर्न्तगत किन्हीं दो भाषाओं को परस्पर एक ही दृष्टि से देखा और परखा जाता है और उसमें भी वाक्य की तुलना की जाती है दो भाषाओं की परस्पर तुलना और फिर उसमें भी वाक्य की तुलना एक गुरुत्तर कार्य है और कठिन भी। ऐसी स्थिति में दोनों का गंभीर ज्ञान अपेक्षित है।

दूसरा ऐतिहासिक वाक्य विचार भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसके अर्न्तगत किसी भाषा के वाक्य विधान का ऐतिहासिक अध्ययन करना पड़ता है। ऐतिहासिक विचार-विनिमय की इस प्रणाली के अर्न्तगत प्रारंभ से लेकर आज तक के परिवर्तनों की समीक्षा सोच समझकर की जाती है। तुलनात्मक वाक्य विचार की अपेक्षा यह कार्य कुछ सुगम प्रतीत होता है, किन्तु ज्ञातपथ यह है कि इस कार्य को पूरी कुशलता से वही व्यक्ति कर सकता है जो मनोवैज्ञानिक

पद्धति का आश्रय ले सके। भाषा विज्ञान में वाक्य विचार का अपना अलग-अलग और विशिष्ट महत्व है, उसे सुलझाया जा सकता है। वाक्य का अध्ययन पदक्रम, अन्वय, निकटस्थ अवयव, केन्द्रिकता, मूलवाक्यता, रूपांतरित वाक्यता, बाह्य संरचना, परिवर्तन आदि से भी किया जाता है।

3. **रूप विज्ञान (Morphology)** :- रूप विचार का भाषा विज्ञान में विशेष महत्व है। इनके अर्न्तगत हम पद रचना का सम्यक अध्ययन करते हैं। इस पद रचना के अध्ययन को हम रूपात्मक विश्लेषण कह सकते हैं। पद विज्ञान और पद विचार भी इसी के नाम हैं। शब्द के विभिन्न भागों में जैसे मूलरूप उपसर्ग, प्रत्यय, विभक्ति आदि अध्ययन करते हैं। भाषा विज्ञान इस विषय का व्याकरण की सहायता से अच्छी तरह समझ सकता है। इस विषय को कुछ लोगों ने प्रत्यय विचार अभिधा से भी पुकारा है।
4. **शब्द विज्ञान (Wordology)** :- रूप या पद मूलाधार शब्द हैं। शब्द पर रचना और इतिहास दो दृष्टियों से विचार-विमर्श किया जा सकता है। किसी भी भाषा शब्द समूह का विचार किया जा सकता है। किसी भी भाषा शब्द समूह का विचार इसी के अर्न्तगत आता है। “कोष निर्माण तथा व्युत्पत्ति शास्त्र भी शब्द विज्ञान के ही अंग हैं। शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जाता है। प्रमुखतः व्युत्पत्तियों के प्रसंग में। किसी भाषा के शब्द समूह के अध्ययन के आधार पर उसे बोलने वाले के सांस्कृतिक इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा सकता है।
5. **ध्वनि विचार** :- ध्वनि से ही शब्द का निर्माण होता है या यों कहें कि शब्द का आधार ध्वनि है। ध्वनि विज्ञान के अर्न्तगत ध्वनि पर अनेक दृष्टियों से विचार किया जाता है। ध्वनि कैसे उत्पन्न होती है और उसको हम किन-किन दिशाओं में या वर्गों में बांट सकते हैं। इतना ही नहीं इसके अर्न्तगत ध्वनि परिवर्तन किन किन दिशाओं में होता है और उसके ऐसे कौन से कारण होते हैं। इन सभी बातों का अध्ययन भाषा विज्ञान में ध्वनि विचार शीर्षक से किया जाता है। ध्वनि से संबंधित अवयवों मुख विवर, नासिका विवर, स्वर तन्त्री तथा ध्वनि यन्त्र आदि को भी इसी विभाग के अर्न्तगत समझते हैं। ध्वनि विचार का अध्ययन भी दो दिशाओं में किया जा सकता है—तुलनात्मक और ऐतिहासिक ध्वनि विचार। तुलनात्मक ध्वनि विचार में किसी स्थिर करते हैं? ग्रिम ने जो ध्वनि नियम बनाया उसका प्रथम भाग तुलनात्मक ध्वनि विचार के ही अर्न्तगत है। इसके साथ ही दूसरा भाग ऐतिहासिक ध्वनि विचार में एक भाषा के ध्वनि विकास का अध्ययन करते समय दृष्टि की ऐतिहासिकता अनिवार्य है।
6. **अर्थ विचार (Semantics)** :- भाषा विज्ञान का यह भी एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके बिना भाषा विज्ञान अधूरा है। अपूर्ण है। प्रो० राजकुमार शर्मा के अनुसार — “भाषा का शरीर वाक्य से चलकर ध्वनि की इकाई पर समाप्त होता है।”

अर्थ विज्ञान के अर्न्तगत भाषा का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। किसी भाषा में किन आधारों पर शब्दों के साथ उनके अर्थ भी बदल जाते हैं, इसका अध्ययन अर्थ विज्ञान का विषय है। इसके साथ ही अर्थ विज्ञान का कार्य यह बतलाना भी है कि कोई एक रूप कितने अर्थों का बोध कराता है तथा वही अर्थ किन-किन रूपों में आ सकता है।

अर्थ विचार की सीमाएं यहीं समाप्त हो जाती हैं, ऐसी बात नहीं है वस्तुतः इसके आगे बढ़कर यह भी बताया जाता है कि शब्दार्थ परिवर्तन की कौन-कौन दशाएं हैं— अर्थोत्कर्ष, अर्थापकर्ष और अर्थ विस्तार अर्थ संकोच का भी परिचय इसके अध्ययन से ही मिलता है। जैसे—

“अश्व” का अर्थ घोडा क्यों हैं, गाया क्यों नहीं आदि बड़े रोचक विषय इसके अन्दर आते हैं। “मृग” शब्द पहले सामान्य पशु अर्थ में प्रयुक्त होता था, किन्तु अब केवल हिरण के लिए ही क्यों प्रयुक्त होने लगा, ये सभी बातें कारण सहित अर्थ विज्ञान में जानी जाती हैं। प्रो० राजकुमार शर्मा के अनुसार— “भाषा विज्ञान जैसे शब्द विषय अर्थ परिवर्तन जैसे मनमोहक और मनोरंजक विषय को पाकर सरस बन जाता है।”

6. **पद विज्ञान** :- अनेक ध्वनियों के समन्वय से पद या शब्द बनता है। पद विज्ञान को रूप विज्ञान, रूप विचार और पद विचार भी कहा जा सकता है। इसमें पद या रूप क्या है ? पद कैसे बनता है ? पद के घटक क्या हैं ? पदों का विभाजन किस आधार पर होता है ? लिंग, विभक्ति, वचन पुरुष, काल प्रकृति प्रत्यय, उपसर्ग आदि तत्व क्या हैं ? इनकी क्या उपयोगिता है ? शब्द और पद में क्या अन्तर होता है ? पद निर्माण कितने प्रकार का होता है ? इत्यादि विषयों का पद विज्ञान में विवेचन किया जाता है।

**गौण विषय** :- भाषा विज्ञान में जिन प्रमुख विषयों का अध्ययन किया जाता है उनका विवेचन करने के बाद अब आवश्यक यह है कि कुछ गौण विज्ञान का अध्ययन किया जाए। इन गौण विषयों में भाषा की उत्पत्ति आदि विषय आते हैं। इनका विवेचन इस प्रकार है—

1. **भाषा की उत्पत्ति** :- भाषा विज्ञान में जिन प्रमुख विषयों का अध्ययन किया जाता है उनमें प्रमुख भाषा की उत्पत्ति है या भाषोत्पत्ति। भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई और उसका विकास किस आधार पर और किस बिन्दु से हुआ, यह समझा जा सकता है। भाषा उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने अपने ढंग से विचारों को प्रकट किया है। प्रायः सभी मतों में कुछ न कुछ अपूर्णता है। हाँ, विकासवाद या समन्वित रूप ही कुछ अधिक मान्यता प्राप्त कर गया है।
2. **भाषाओं का वर्गीकरण** :- भाषा विज्ञान के अन्तर्गत भाषाओं के वर्गीकरण विषयक तथ्यों, कुछ सिद्धान्तों को निश्चित किया जाता है और फिर संसार की भाषाओं का विभाजन किया जाता है। भाषा विज्ञान वेस्ता विभिन्न भाषाओं का तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक अध्ययन करके, उन्हें विभिन्न भाषा परिवारों में विभजित करते हैं। भाषाओं के प्रवृत्ति मूलक तथा पारिवारिक वर्गीकरण का कार्य भाषा विज्ञान का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह वर्गीकरण अर्थ या ध्वनि संबंधी अनेक भ्रमों के निवारण में भी सहायक होता है।
3. **व्युत्पत्ति विचार** :- यह भी भाषा विज्ञान का गौण, किन्तु पर्याप्त मनोरंजक विषय है। भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन का सूत्रपात करने में अंग का विशेष हाथ रहा है। ध्वनि अर्थ तथा रूप विचार के सम्मिलित प्रयोग से इस विषय उत्पत्ति हुई है। किसी शब्द का जन्म, परिवर्तन परिवर्द्धन तथा विकास जिस आधार पर होता है उसका अध्ययन भाषा विज्ञान करता है। शब्दों की व्युत्पत्ति का बड़ा महत्व हमें व्युत्पत्ति के प्रकरण में भाषा विज्ञान यह बताता है कि कौन सा शब्द कहाँ और किस प्रकार कार्य करता है तथा प्रकार बनता है।
4. **शब्द कोश** :- शब्दों के समूह में होने वाले परिवर्तन विदेशी शब्दों ग्रहण आदि कई बातों पर इस विषय के अन्तर्गत विचार विमर्श किया जाता है।
5. **प्रागैतिहासिक खोज** :- भाषा विज्ञान के क्षेत्र में इस विषय का अभी हाल में ही जन्म हुआ। इस विषय का भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से विशेष महत्व है। इसके द्वारा प्राचीन भाषा के विश्लेषण द्वारा संबंधित काल की सम्यता व संस्कृति का सरलता से पता लगाया जा सकता है। भाषा के आदि रूपों को समझने में भी इससे बड़ी मदद मिलती है।
6. **भाषा भूगोल** :- इसमें किसी भाषा क्षेत्र का ध्वनि रूप वाक्य, अर्थ तथा शब्द आदि की दृष्टि से अध्ययन करके उसे भाषाओं और बोलियों में बांटा जाता है। उत्तरी भारत में भारतीय आर्य भाषा परिवार की कितनी भाषाएँ हैं और उसकी

कितनी बोलियां तथा उपबोलियां हैं एवं उसकी निश्चित सीमाएं क्या हैं, इस प्रकार का अध्ययन इसी के अर्न्तगत आता है। भाषा विज्ञान की बोली भूगोल नामक प्रसिद्ध शाखा इसी के अर्न्तगत आती है।

7. **शैली विज्ञान (Stylistics)** :- एक भाषा भाषी सभी व्यक्तियों की भाषा, ध्वनि, शब्द रूप तथा वाक्य रचना आदि की दृष्टि से पूर्णतः समान नहीं होती। इसी प्रकार एक ही भाषा में लिखने वाली लेखकों एवं कवियों की भाषा में उनकी कुछ शैलीगत विशेषताएं होती हैं जिनके आधार पर बतलाया जा सकता है कि कौन किसकी रचना है। इन वैयक्तिक अंतरों या शैलीगत विशेषताओं या काव्य भाषा का अध्ययन शैली विज्ञान का विषय है।

8. **सर्वेक्षण पद्धति (Field Method)** :- किसी क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा के विश्लेषण के लिए सामग्री एकत्र करने की पद्धति का अध्ययन सर्वेक्षण पद्धति कहलाता है। इसमें सूचक कैसा चूने सर्वेक्षण कैसा हो, प्रश्नावली कैसे बनाएं, सामग्री कैसे लिखें जैसे प्रश्नों पर विचार किया जाता है।

गौण अंगों के रूप में मनोभाषा विज्ञान, भाषा प्रकार विज्ञान, भाषिक, पुननिर्माण, भाषा विकास आदि की गणना भी की जाती है।

9. **लिपि** :- लिपि के अभाव में तो कोई भी भाषा विज्ञान पूर्णता का दावा नहीं कर सकता है जब कभी भी लिपि की उत्पत्ति विकास तथा उसके भविष्य के संबंध में विचार किया जाता है तब किसी भी लिपि के प्राचीन, नवीन रूपों को तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है, किसी भी भाषा के प्राचीन और नवीन रूपों का अन्तर समझने में अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। डॉ० भोलानाथ तिवारी ने इन गौण विषयों के अतिरिक्त ऐसे विषय भी बताए हैं जो भाषा विज्ञान की अध्ययन की सीमा में किसी न किसी रूप में अवश्य आ जाते हैं।

1. भाषा तथा उसके विविध रूप, ग्रथ बोली, विभाषा उपभाषा, राष्ट्र भाषा, कृत्रिम भाषा, विशिष्ट भाषा और गुप्त भाषा आदि का भी अध्ययन नहीं किया जाता है।

2. उन रूपों के बनने के कारण।

3. भाषा की प्रकृति।

4. भाषा के विकास के कारण।

5. उसके विकास में व्याघात उपस्थित करने वाले कारण।

6. भाषा विज्ञान का इतिहास या भाषा के अध्ययन का इतिहास।

7. किसी जीवित भाषा के अध्ययनार्थ सामग्री एकत्र करने की प्रणाली का अध्ययन किया जाता है।

निष्कर्ष :- यही कहा जा सकता है कि भाषा विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसकी सीमा में अनेक विषय आते हैं। वस्तुतः डॉ० भोलानाथ तिवारी ने पूर्वोक्त छह अंगों को ही भाषा विज्ञान की शाखाओं या विभागों के रूप में स्वीकारा है। वहीं डॉ० कर्णसिंह ने केवल चार ही प्रमुख अंग या विभाग माने हैं। प्रो० राजकुमार शर्मा ने 5 ही अंग स्वीकारे हैं।

प्रश्न.5 भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रचलित सिद्धान्तों की मीमांसा करते हुए अपना मत निर्धारित कीजिए।  
 उत्तर भाषा विज्ञान विज्ञान हैं, कला नहीं ! ज्ञान विज्ञान की शाखाएँ विभिन्न प्रश्न समस्या या शंकाओं का हल खोजने का प्रयत्न तो करती ही हैं फिर भी कुछ रहस्य ऐसे होते हैं जिनके वैज्ञानिक हल प्रस्तुत करना बहुत कठिन हो जाता है। भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न भी मनुष्य की उत्पत्ति और उसके मन में स्थित भाव और विचारों की उत्पत्ति के साथ जुड़ा है। जब तक मनुष्य की उत्पत्ति और उसके मन के भाव-विचारों की उत्पत्ति के रहस्य को अनावृत्त नहीं किया जाता तब तक भाषोत्पत्ति के संबंध में कुछ बोलना कठिन है इटली के सुप्रसिद्ध विद्वान मेरियो पाई (Mario Pai) ने लिखा है—

" If there is one thing on which all Linguistics are fully' agreed. it is that the problem of the origin of human speech is still un solved."

The story of language (1952) page 18

भाषा की उत्पत्ति विषयक इस मत की अरुचि का विचार इतने प्रबल रूप से सामने आया कि सन् 1866 में पेरिस में स्थापित होने वाली भाषा विज्ञान परिषद (ला सोसियते द लैंग्विस्टीक) के संस्थापकों ने अपने नियमों से भाषा की उत्पत्ति के प्रश्न पर विचार करने पर ही प्रतिबंध लगा दिया था। लेकिन सन् 1866 के बाद भी इस प्रश्न पर विचार होता रहा है जो आवश्यक व स्वाभाविक भी है।

कई विद्वानों ने इस प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयत्न किया है और उनके सिद्धान्तों का महत्व केवल ऐतिहासिक है। अतीत में किए गए चिन्तन के अलावा इन सिद्धान्तों का कोई मौलिक योगदान नहीं है। फिर भी भाषा की उत्पत्ति के ऐतिहासिक चिन्तनपरक सिद्धान्तों का विचार नीचे क्रमशः करेंगे।

1. **दैवी उत्पत्ति का सिद्धान्त** :- यह भाषा की उत्पत्ति का सबसे प्राचीन सिद्धान्त है। इस मत की मान्यता के अनुसार ईश्वर ने मनुष्य की प्राप्ति के साथ ही उसके उपयोग के लिए पूर्ण रूप में विकसित भाषा का निर्माण भी किया। विश्व के विविध धर्मग्रंथों, प्राचीन दर्शनों तथा साहित्य के अन्तर्गत विविध रूपों में इस सिद्धान्त का उल्लेख एवं समर्थन पाया जाता है। वेदों को "अपौरुषेय" कहना और संस्कृत भाषा को "देववाणी" मानना इसी बात का द्योतक है। ऋग्वेद में मंत्र हैं—

देवी वाचमजनयन्त देवां

तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति

(ऋग्वेद, 8-100-11)

अर्थात्— वाग्देवी वाणी को देवों ने उत्पन्न किया और सभी प्राणी उसी को बोलते हैं।

पाणिनी चौदह सूत्रों की उत्पत्ति शिव के उमरु से मानते हैं। बौद्ध धर्मावलम्बी मागधी और जैन लोग अर्द्ध मागधी को समर्थन देते हैं। ईसाई लोग प्राचीन धर्म नियम की मूलभाषा इब्रानी या हिब्रू को आदि भाषा मानते हैं। मुसलमान कुरान को "खुदा" का कलाम कहते हैं।

बौद्धों के अनुसार पालिया मागधी विश्व की मूल भाषा है, शेष भाषाएँ तो उसी से उत्पन्न हुई हैं—

सा मागधी मूलभाषा नरा यायादिकाधिका।

ब्रह्मानोचस्सु तालया संबुद्धा चापि भासरे ।।

अर्थात् कल्प के आरंभ में मनुष्य के मुख से यही भाषा निकली।

निरुक्त के प्रणेता यास्क की दृष्टि से “प्रवरों ने अवरो को यह ज्ञान दिया।” पंतलति के मत से “ईश्वर से पूर्व कोई गुरु नहीं था। इंजील को धर्मग्रंथ मानने वालों के लिए तो यहूदी भाषा ही आदम की आदिम भाषा थी जो ईश्वर प्रदत्त हैं। “कच्चायन” पाली व्याकरण के रचयिता का कथन—

“मागधी भाषा सारी भाषाओं का मूल है”

मनु ने अपनी मनु स्मृति में लिखा है—

सर्वेषा तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।

वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥

अर्थात् ब्रह्मा ने भिन्न-भिन्न कर्मों और व्यवस्थाओं के साथ साथ सारे नामों का निर्माण भी सृष्टि के आदि में वेद शब्दों से ही किया।

पाणिनी के अनुसार—

नृत्यावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंचवारम् ।

उद्धर्तृकामः सनकादि सिद्धानते द्विमर्श शिव सूजालम् ॥

अर्थात् संस्कृत की सम्पूर्ण वर्णमाला अइउण् ऋलृक आदि चौदह माहेश्वर सूत्रों से उत्पन्न हुई। कैथोलिक ईसाई प्राचीन विधान (Old Testament) को प्रमुख आधार मानकर संसार की सभी भाषाओं को जननी हिब्रू भाषा को मानते हैं।

**समीक्षा** :- यह सिद्धान्त सर्वथा भ्रम मूलक व निराधार है। इसके प्रमाण मिश्र के राजा सेमेटिक्स तथा अकबर द्वारा करवाए हुए प्रयोग हैं जिनसे यह सिद्ध हो गया कि भाषा कोई बालक से नहीं वरन् संसर्ग से सीखता है। एक बात अवश्य है और वह यह है कि भाषा केवल मनुष्य के बीच ईश्वर ने भाषा उत्पत्ति की शक्ति मनुष्य के अतिरिक्त अन्य किसी जीव को नहीं दी है। भाषा कोई पैतृक सम्पत्ति नहीं है उसका अर्जन किया जाता है भाषा यदि इश्वर निर्मित होती तो संसार के लिए मूलतः एक ही भाषा होती किन्तु भाषाओं के अध्ययन विश्लेषण से पता चला है कि संसार में हजारों भाषाएं बालो जाती हैं। और उनका मूल कोई एक ही भाषा नहीं है।

2. **संकेतवाद** :- इस सिद्धान्त का उद्देश्य है—

“संकेत प्रभवा हि वक्”

अर्थात्—संकेत से ही बोलियाँ निकली। कुछ लोगों का कहना है कि पहले मनुष्य सब कामों के लिए कुछ हाथ पैर अंगुली चलाकर मन की बात बताता होगा जैसा पानी पीने के लिए ओठों पर हठेली लगाकर जैसा की लोग अब भी करते हैं। उन्हीं संकेतों के सहारे कुछ ध्वनियों की उत्पत्ति हो गई जैसे—ओ, ए आदि। इन्हीं से विकसित होकर भाषा का निर्माण हो गया। डॉ० श्याम सुन्दर दास ने अपने “भाषा विज्ञान” नामक ग्रन्थ में कहा है कि—

“कुछ साहसी विद्वानों ने एक दूसरा मत प्रतिपादित किया है कि भाषा मनुष्य की सांकेतिक संस्था है। आदिकाल से जब मनुष्यों हस्तादि के साधारण संकेतों से काम चलता न देखा, तो उन्होंने कुछ ध्वनि संकेतों को जन्म दिया। वही ध्वनि—संकेत विकसित होते-होते आज इस रूप में दिखाई दे रहे हैं।”

**समीक्षा** :- परन्तु यह तथ्य सही नहीं हो सकता क्योंकि संकेत तो अधूरा सहारा है। केवल संकेत की बात तब तक नहीं समझी जा सकती जब तक वाक्य का सहारा न लिया गया है। यदि संकेतों से ही मन की बात कहना संभव

होता तो फिर भाषा का निर्माण ही क्यों होता? इसलिए यह भ्रममूलक तथ्य हैं कि बिना वाक्य के सहारे किसी की अभिव्यक्ति को समझा जा सकता है।

3. **धातु संग्रहवाद** :- इस सिद्धान्त के अनुसार शब्द और अर्थ में एक प्रकार की रहस्यात्मक प्राकृतिक संबंध होता है। इस ओर संकेत प्लेटो ने किया था किन्तु इसे व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का श्रेय जर्मन प्रोफेसर हैज (Heyes) को है। बाद में इनके शिष्य डॉ० स्टाइन्थाल ने मुद्रित रूप में विद्वानों के समक्ष रखा है।

इन सिद्धान्तों के द्वारा प्रतिपादित विषय है—धातु संग्रहाद्वाक् अर्थात् धातुओं से बोली बनी। इसी को डिंग—डॉंगवाद (Ding-Dong Theory) या रणन सिद्धान्त भी कहा गया है।

जर्मन विद्वान प्रोफेसर हैज के मत के आधार पर मैक्समूलर ने यह सिद्ध करना चाहा कि सृष्टि के आरम्भ से मनुष्य के अन्दर कोई ऐसी शक्ति थी कि उसने 400—500 धातुओं को जन्म दिया। शनैः शनैः वह शक्ति समाप्त हो गई और इसी प्रकार 500 धातुओं के सहारे भाषा का सृजन हो गया। शाकटायन के मतानुसार—

“सभी शब्दों की निर्मित मूलत धातु से हुई हैं:

पश्चिम में इस मत के प्राचीनतम संकेत प्लेटो व उनके अनन्तर मैक्समूलर पाए जाते हैं। उदहारणार्थ—

“हम एक लकड़ी को हथौड़े से लोहा, पीतल, सोना, शीश, पत्थर, ईट तथा लकड़ी आदि पर चोट करे तो हम अलग—अलग ध्वनियों को पाते हैं। विविध वस्तुओं के सम्पर्क में मनुष्य आता गया तो अनायास ही उसके मुंह से उन उन विशिष्ट वस्तुओं के बोधक शब्द निकल पड़े।”

**समीक्षा** :- भाषा की उत्पत्ति के संबंध में प्रस्थापित इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसमें काल्पनिक तत्वों की भरमार है और वैज्ञानिकता का अभाव पाया गया है—

1. धातु भाषा का सहज अंग नहीं है।
  2. भाषा का प्रारंभ वाक्यों से हुआ था, वर्णात्मक शब्दों से नहीं।
  3. यह सिद्धान्त विकासवाद के विरुद्ध पड़ता है। क्योंकि इसके अनुसार भाषा आदिकाल से ही निर्मित थी और धातुओं से शब्द निर्माण बाद में जबकि आदिकाल में भाषा में प्रयुक्त मात्र कुछ ही धातुएँ थीं और अब भाषा नित्यप्रति उन्नत व विकसित हो रही है।
4. **निर्णय सिद्धान्त** :- यह सिद्धान्त प्रतीकवाद या संकेतवाद के नाम से भी पहचाना जाता है। इसका प्रतिपादन फ्रांसीसी विद्वान रूसो ने किया। आगे चलकर पोलिनेशियन भाषा के विद्वान डॉ० राये, रिचर्ड, आइसलैंडिक भाषा के विद्वान अलेक्जेंडर जोहानसन आदि ने अधिक से अधिक तर्क सम्मत् रूप में इसी सिद्धान्त के मिलते—जुलते इंगित सिद्धान्त का (Gestural Theory) प्रतिपादन किया।

संकेत सिद्धान्त के अनुसार अपनी प्रारंभिक अवस्था में मनुष्य अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए आंगिक संकेतों का उपयोग करता है। आदि मानव ने भी इन संकेतों को कभी अनुभव किया होगा। इस कठिनाई और अव्यवस्था से युक्त होने के लिए उसने कहीं एकत्र आकर भावों विचारों व वस्तुओं के नामों के संबंध में समझौता कर कुछ निर्णय लिए होंगे। इस प्रकार एक सांकेतिक संस्था के रूप में भाषा का जन्म हुआ होगा।

**समीक्षा** :- इस सिद्धान्त के आधार पर विचार करने पर भी भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न हल नहीं हो सकता। इन तर्कों में सर्वप्रमुख तर्क है—

1. प्रारंभ में अगर कोई भाषा ही नहीं थी तो लोग एक स्थान पर कैसे इकट्ठा हुए ?

2. इस सिद्धान्त के अनुसार यह बात सामने आती है कि मनुष्य के पास पहले भाषा नहीं थी। भाषा के अभाव में मनुष्य भाषा को भाषा की आवश्यकता का अनुभव कैसे हुआ।
3. भाषा के अभाव में यदि महत्वपूर्ण विषय पर विचार-विमर्श कर सकना संभव था तो फिर अलग से भाषा की अभिव्यक्ति के नए माध्यम की आवश्यकता ही क्यों पड़ी थी ?

अतः इसके सहारे भी हमारी समस्याओं का हल नहीं मिलता।

5. **श्रमपरिहार-सिद्धान्त** :- मनुष्य के कार्य के प्रमुख रूप से दो हिस्से हो सकते हैं। (1) बौद्धिक और (2) शारीरिक। इसका नाम ये-हैं-हो वाद भी कहा जाता है। इसके अनुसार-  
“वासोच्छ्वासास वेगाद्विवृति”

अर्थात् श्वास तथा उच्छ्वास के वेग के कारण बोलियां बनीं। इस सिद्धान्त की जन्मदाता न्चार (Noire) हैं। इसीलिए इसे न्यावर थोरी भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के समर्थक यह मानते हैं कि कठिन परिश्रम करते समय मनुष्य जब साँस लेता है अथवा श्रमपरिहार के लिए कोई श्वास वेग के साथ ध्वनि उत्पन्न करता है तो यह एक शब्द को जन्म देता है। इसका प्रमाण धोबी की छियो-मल्लाह की यो हैं हो श्रमिकों की रहें, हो अथवा हूँ-हूँ ध्वनियाँ हैं।

**समीक्षा** :- यह सिद्धान्त भी स्वीकार्य नहीं हो सकता क्योंकि भाषा में इस प्रकार के शब्दों का कोई महत्व नहीं होता।

1. श्रमपरिहार के समय उद्भूत चार छहः ध्वनियों से भाषा का निर्माण कैसे हो सकता है ? किसी भी भाषा में इस प्रकार की ध्वनियों की संख्या इससे अधिक नहीं हो सकती।
2. श्रमपरिहार के समय में उत्पन्न ये ध्वनियाँ बिलकुल ही अर्थहीन हैं।

इस प्रकार यह सिद्धान्त नितान्त भ्रमपूर्ण व हास्यास्पद है। क्योंकि इन शब्दों को साहित्य अथवा भाषा में कोई महत्व नहीं है।

6. **अनुकरण मूलकतावाद** :- इस सिद्धान्त का अर्थ है-

“ अनुकरण मन्त्रकारणम्”

अर्थात् अनुकरण पर बोलियाँ बनीं। इसका मजाक उड़ाने के लिए मैक्समूलर ने कुत्ते की आवाज के लिए प्रयुक्त शब्द के आधार पर इसे बो वो सिद्धान्त (Box-Wow Theory) के नाम से पुकारा।

इस सिद्धान्त के अनुसार वस्तुओं से उत्पन्न होने वाली नैसर्गिक ध्वनियों पर उनके नाम दिए गए हैं। जिस वस्तु से जिस प्रकार की ध्वनि सुनाई दी उसी ध्वनि के अनुकरण पर उसका नाम रखा गश् किसी प्राणी या पदार्थ से सुनी गई ध्वनियों का वर्गीकरण- (1) ध्वन्यात्मक, (2) अनुकरणात्मक (3) दृश्यात्मक का रहा होगा-

1. **ध्वन्यात्मक** :- शब्द निर्माण के अन्तर्गत-क-का रहने वाला काक, कूक गाने वाली कोकिल, दर दर ध्वनि करने वाला दर्दूर, झर-झरने वाला निर्झर झरना या, कुकडूकू ध्वनि करने वाला कुकुट, फट-फट आवाज करने वाला फटफटिया।
2. **अनुकरणात्मक शब्दों के अन्तर्गत** :- गर्जन, तर्जन, झनझन, धमाधम, गड़गड़ाहट, धरधराहट, सनसनाहट, घिघियाना, मिमियाना, किकियाना, दहाड़ना, गुर्राणा, हिनहिनाना, खटखटाना, बड़बड़ाना, चिंघाड़ना, तड़तड़ाना, फड़फड़ाना आदि।
3. **दृश्यात्मक शब्दों के अन्तर्गत** :- चकचक, चकमक, झकझक, झलमल आदि।

कवि सुमित्रानंदन पंतजी के काव्य में प्राप्त अनुकरण वाची शब्द अधिकता से पाए जाते हैं जिनमें प्रातिनिधिक रूप से कुछ शब्द इस प्रकार हैं- सिहर सिहर, लहर-लहर, लाले-लोल, पल-पल, डोल-डोल, कल-कल, छल-छल आदि।

**समीक्षा** :- अनुकरण मूलक शब्द प्रमुखतः भाषा के अलंकरण पक्ष से संबंधित हैं। अतः वे भाषा का आधार हो सकते हैं। कविता की भाषा में इन शब्दों की अधिकता पाई जाती है। यह सिद्धान्त किसी भी भाषा की समस्त शब्दावली को उद्घाटित नहीं करता केवल भाषा कि सीमित अंश के विकास की ही व्याख्या करता है।

इसलिए केवल इतना ही माना जा सकता है कि भाषा में कुछ शब्द अवश्य अनुकरण के आधार पर ही बने हैं परंतु सम्पूर्ण भाषा और अनुकरण में कोई संबंध नहीं है।

7. **अनुकरण सिद्धान्त** :- एक दृष्टि से यह अनुकरण सिद्धान्त का ही अंश है। अनुकरण सिद्धान्त में अनुकरण के माध्यम या स्रोत पशु-पक्षी आदि सजीव हैं। जबकि इस मत के अनुसार जड पदार्थों (धातु, लकड़ी पानी आदि ) के परस्पर संसर्ग या आघात पर जो ध्वनि आती है उसे आधार बनाकर भाषा की उत्पत्ति हुई है।

वस्तुतः यह दोनों सिद्धान्त एक ही हैं।

8. **मनोभावां भिव्यक्ति** :- इस सिद्धान्त का अर्थ-

“विविक्षा प्रेरितीहि वाक्”

अर्थात्-मन की बात कहने की चाह से बोलियाँ निकली हैं।

इस सिद्धान्त के अनुसार भाषा की उत्पत्ति मनुष्य के मन में भावों की सहज रूप से अभिव्यक्ति करने की प्रवृत्ति से हुई है। इसके अनुसार प्रसन्नता शोक, घृणा, विस्मय, क्रोध, क्षोभ, भय आदि मनोभावों की नैसर्गिक अभिव्यक्ति के समय उत्पन्न ध्वनियों से भाषा का निर्माण हुआ है। अर्थात् मनाव मूलत विचार प्रधान न होकर भाव प्रधान था। भावा वेग की स्थिति में मनुष्य के मुख से अनायास ही कुछ ध्वनियाँ विकल पड़ती जैसे- आह, वाह, हाय धिक, छिः जैसी परिस्थिति वैसी ध्वनि इन संवेदक ध्वनियों से ही आगे चलकर भाषा का विकास हुआ।

**समीक्षा** :- इस सिद्धान्त को मानने में दो कठिनाइयाँ हैं- पहली इन शब्दों की संख्या नगण्य हैं और ये किसी भाषा के अंग नहीं बन पाए। दूसरी कठिनाई विभिन्न भाषाओं में ये शब्द समरूप में नहीं मिलते। यदि ये स्वाभाविक रूप से निकले होते तो प्रत्येक मनुष्य के मुँह से इनका उच्चारण एक-सा ही होता। परन्तु ऐसा नहीं है। अतः यह सिद्धान्त भी अमान्य है।

मनुष्य जब बोलने में असमर्थ होता है तभी प्रायः इन शब्दों का उपयोग करता है- डॉ० पीताम्बर सरोदे ने अपनी पुस्तक सरल भाषा विज्ञान में गालिब के शब्दों को लिया है-

हैं कुछ ऐसी ही बात जो चुप हूँ  
वरना क्या बात करनी नहीं आती ?

गालिब

इसलिए भावावेग के लिए प्रयुक्त वे शब्द भाषा का स्वाभाविक अंग नहीं हो सकते।

9. **विमर्शवाद** :- इस सिद्धान्त का अर्थ है-

“परस्पर विमर्शोद्घाणी”

अर्थात् लोगों ने मिलजुल कर बोली बना ली। मनुष्यों ने अपना काम धाम बढ़ता देखकर समस्त नवीन वस्तुओं का नामकरण किया होगा। यह सिद्धान्त निर्णय सिद्धान्त का ही प्रतिरूप है।

10. **विकासवाद** :- इस वाद का मूल है-

“क्रमशोविकास ”

अर्थात्— क्रमशः विकास होने से बोलियाँ बनीं इस सिद्धान्त के अनुसार आरंभ में मनुष्य कुछ निरर्थक ध्वनियों का उच्चारण करता रहा होगा। क्रमशः उसने जिस प्रकार अन्य क्षेत्रों में उन्नति की उसी प्रकार ध्वनियों ने उच्चरण तथा उनके अर्थ में विकास होता रहा होगा।

**समीक्षा** :- यह भी हमारे मूल प्रश्न का हल नहीं है। क्योंकि किसी भी क्रिया या वस्तु का वहीं नाम क्यों पड़ा कोई दूसरा क्यों नहीं ध्वनि और अर्थ में क्या संबंध है।

11. **समन्वयवाद** :- इस वाद का अर्थ है—

“सर्वसत्तसमन्वया द्वागुत्पत्तिः”

अर्थात् सब मतों के समन्वय से भाषा बनी है। यह वाद अनुकरण, अनुरणन, विमर्श, मनोभा भिव्यंजन तथा विकास का समन्वित रूप है। स्वीट का यह मत है कि उक्त समस्त वादों के समन्वय से ही भाषा का जन्म संभव माना जा सकता है। प्रतीकात्मक शब्दों को स्वीट ने बहुत महत्व दिया है।

12. **प्रत्यक्ष-परोक्ष मार्ग** :- कुछ विद्वानों ने भाषा की उत्पत्ति के दो मार्ग स्थिर किए हैं। प्रत्यक्ष मार्ग और परोक्ष मार्ग। प्रत्यक्ष मार्ग के अन्तर्गत उक्त सभी सिद्धान्त आ जाते हैं। इस मार्ग के अनुसार भाषा के जन्म को सीधे ही यानी मूल से पकड़ते हैं। परन्तु मार्ग के अनुसार उलटे चलते हैं।

सभी सिद्धान्तों का तुलनात्मक और सम्यक अध्ययन करने के उपरान्त हम इसी निष्कर्ष पर आ सकते हैं कि इनमें काल्पनिकता, अतिरंजिता, अतिशयोक्ति और चमत्कार प्रधानता है। आज का भाषा वैज्ञानिक तो इस पर सोचना भी समय का अपव्यय समझता है। लेकिन इस संबंध में भाषा विज्ञान को निश्चित मत देना आवश्यक है।

प्रश्न.5 “भाषा की प्रकृति परिवर्तनशीलता की हैं।” इस कथन को स्पष्ट करते हुए भाषा की परिवर्तनशीलता के कारणों पर प्रकाश डालिए। या भाषा की परिवर्तनशीलता ही उसके विकास का कारण हैं। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर भाषा के संबंध में विस्तृत एवं संकीर्ण दो दृष्टियों से, विचार किया जा सकता है। विस्तृत दृष्टि से भाषा जीवित प्राणी के संवेदनात्मक, भावात्मक एवं ऐच्छिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए कायिक एवं वाचिक दोनों प्रकार की इन्द्रियों का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। कायिक संचालन द्वारा “अंगविक्षेप भाषा” तथा वाक द्वारा “वाग भाषा” आविर्भूत होती हैं। अंगविक्षेप की परिगणना की जा सकती है। किन्तु संकीर्ण दृष्टि से भाषा यादृच्छिक वाक् प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से मानव समुदाय परस्पर व्यवहार करता है।” इस परिभाषा के अनुसार भाषा मानव कंठ से उद्गीर्ण सार्थक ध्वनियों तक ही सीमित है और आज विश्व में कोई ऐसा मानव समुदाय नहीं है जिसकी अपनी भाषा नहीं है।

**भाषा की परिवर्तनशीलता** :- समाज व्यक्तियों का समूह है और व्यक्ति परिवर्तनशील होता है। मनुष्य परिवर्तनशील है। अतः भाषा भी परिवर्तनशील ही है। उसका भी विकास होता है मनुष्य जीवन के उद्भव एवं विकास की भांति ही भाषा का उद्भव एवं विकास होता है। परिवर्तनशीलता, गतिशीलता अथवा विकास एक ही वस्तु है इसका प्रभाव भाषा के चारों ही रूपों—(अर्थ, ध्वनि, पद व वाक्य) पर पड़ता है। भाषा प्राचीन रूप छोड़कर नवीन और नवीन से भी भविष्य के लिए नित्य नए रूपों में प्रकट होती रहती है।

यूरोप में इस विषय पर गम्भीरता से और व्यवस्थित रूप से विचार करने वाले प्रथम व्यक्ति डैनिश विद्वान जे. एच. ब्रेडसडॉक हैं।

**भाषा परिवर्तन : विकास या ह्रास** :- आधुनिक युग में हमारा सम्पर्क पाश्चात्य देशों से हो गया है। इस सम्पर्क के कारण हमारी संस्कृति और सभ्यता प्रभावित हो रही है तो भाषा अप्रभावित कैसे रह सकती है। स्पष्ट बात यह है कि पाश्चात्य देशों के सम्पर्क में आने के कारण हम भाषा में बदलाव या परिवर्तन अनुभव कर रहे हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि भाषा विदेशी सम्पर्क के कारण ही बदल रही है और आगे और भी बदलेगी। जब हम यह मान लेते हैं कि व्यक्ति, उसकी सभ्यता और संस्कृति और भाषा में परिवर्तन होता है तो सहसा मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि भाषा में होने वाले परिवर्तनों के मूल कारण कौन से हैं। जो परिवर्तन हो रहे हैं वे उसके विकास के सूचक हैं या पतन के यह सचमुच विचारणीय विषय हैं।

यह स्थिति न केवल भाषा अपितु व्यक्ति के साथ भी होती है। “भाषा परिवर्तनशील है” इस बात को प्रमाणित कर लेने के पश्चात् प्रश्न यह है कि भाषा का यह परिवर्तन उसका विकास है या ह्रास ? यदि विकास है तो भाषा की उन्नति है और यदि ह्रास तो इससे बरी स्थिति भाषा के लिए और क्या हो सकती है ? भाषा वैज्ञानिकों ने इस मार्ग से बचकर बिल्कुल नया रास्ता पकड़ लिया है और अपने को साफ बचा गए हैं। वह रास्ता है जिस पर चलकर उन्होंने इसे न तो, ह्रास कहा है और न ही विकास, बल्कि परिवर्तन के नाम से सम्बोधित किया है।

“भाषा का स्वभाव वही उसका धर्म है और यह धर्म परिवर्तनशीलता ही है। यह परिवर्तन विकास के माध्यम से गति पाता है। उसको हम न तो भाषा का उत्थान ही कह सकते हैं और न ही पतन।” वास्तव में यह परिवर्तन है। **परिवर्तन के कारण** :- भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य करने वाले विद्वानों ने भाषा विषयक परिवर्तनों में दो प्रकार के परिवर्तनों की चर्चा की है— एक तो आन्तरिक परिवर्तन और दूसरे बाह्य परिवर्तन। डॉ० मंगलदेव शास्त्री ने भाषा की अविच्छन्न परम्परा से नहीं की धारा का साम्य जोड़ा है और कहा है कि—

“नदी की धारा में अविच्छन्न प्रवाह होने के कारण ही स्वाभाविक गति होती है साथ ही उस पर भूमि तल का भी जिस पर वह बहती है, प्रभाव पड़ता है यदि वह धारा ऐसी गम्भीर है कि जिसका संबंध भूमि, तल के नीचे बहने वाले स्रोतों से भी है तब भी उसके प्रवाह में दोनों तरह का प्रभाव बराबर रहेगा। भाषा के प्रवाह में उसके अभ्यंतर रूप अर्थ का वही स्थान है जो एक गम्भीर नदी की धारा के लिए भूमि तल के नीचे बहते स्रोतों का होता है। भाषा के विकास और परिवर्तन पर भी स्वाभाविक कारणों के अतिरिक्त आगन्तुक या अनुसंगिक कारणों का भी प्रभाव पड़ता है।”

**डॉ० मंगलदेव शास्त्रीजी** ने भाषा परिवर्तन के कारणों को निम्न लिखित विवेचित किया है—

1. भौगोलिक प्रभाव
2. विभिन्न जातियों की शारीरिक घटना का प्रभाव
3. जातियों के मानसिक अवस्था भेद का प्रभाव
4. प्रयत्न लाघव की प्रवृत्ति

**अभ्यंतर कारणों** के अर्न्तगत **भोलानाथ तिवारी** भी परिवर्तन के कारण सात मानते हैं —

1. प्रयोग से घिसजाना
2. बल
3. प्रयत्न लाघव
4. मानसिक स्थिरता
5. अनुकरण की अपूर्णता
6. जानबूझकर परिवर्तन
7. जातिय मनोवृत्ति

**डॉ० कर्ण** ने पांच कारणों का समावेश किया है—

1. प्रयत्न लाघव
2. अनुकरण की अपूर्णता
3. मात्रा सुर बलाघात
4. भावावेश
5. सादृश्य या मिथ्यासादृश्य आदि।

इनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है।

1. **भौगोलिक प्रभाव के कारण परिवर्तन** :- भाषा परिवर्तन के कारणों में भौगोलिक कारणों का विशेष महत्व है। इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि विभिन्न जातियों के इतिहास, विकास, संस्कृति, सभ्यता और स्वभाव पर भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। ऊष्ण और शीत प्रधान देशों के व्यक्तियों के उच्चारण में भिन्नता होती है उसका कारण भौगोलिक परिस्थितियां होती हैं।
2. **शारीरिक भेद** :- यूरोपीय और भारतीय व्यक्ति के शारीरिक अंशों में पर्याप्त मात्रा में विभेद पाया जाता है। नासिका को आकृति किसी की लम्बी होती है तो किसी की चपटी और किसी की गोल। इसी भांति ओष्ठों की आकृति में भी

अन्तर होता है। लम्बे और पतले ओष्ठों से जो उच्चारण निकलता है ठीक वही मोटे ओष्ठों से नहीं निकलता। उसमें पर्याप्त अन्तर होता है। इस प्रकार भी भाषा में परिवर्तन आ जाता है।

3. **मानसिक अन्तर** :- प्रत्येक व्यक्ति का मानसिक स्तर एक-दूसरे से भिन्न होता है। यह माना कि यह स्तर भेद कम भी हो सकता है, किन्तु यह स्पष्ट है कि मानसिक स्तर का भेद भी भाषा में परिवर्तन ला सकता है। बंगाली और मद्रासी को ही लीजिए, दोनों के उच्चारण में जो भिन्नता रहती है उसका मानसिक स्तर भेद ही है। बंगाली के उच्चारण में तीव्रता का पुट विद्यमान रहता है। और मद्रासी के उच्चारण में व्यंजनों की उच्चारण विष्यक कठिनता को आसानी से देखा और समझा जा सकता है।
4. **प्रयत्न लाघव** :- मनुष्य स्वाभाविक रूप से अपने प्रयास में संक्षिप्त लाना चाहता है और उसी मार्ग को अपनाता है जिसके स्तर पर सरलता का अनुभव कर सके। सुप्रसिद्ध विद्वान लॉक (Lock) के मतानुसार –  
“मानव परिश्रम के लिए परिश्रम करना पसंद नहीं करता।”

कम श्रम से अधिक लाभ की यह भावना भाषा में भी काम आती है। यही “प्रयत्न लाघव” कहलाता है। भाषा में इस प्रकार के अनेक उदाहरण पाए जाते हैं—

नरेन्द्र— नरेन                      जयवन्त—जयु

रामेश्वर—रमेसुर      टेलिफोन—फोन

हृदय— हिय                      प्रिय—पिय

धर्म—धम्म                      कज्जल—काजल और आदित्यवार प्रयत्न लाघव का वरदान पाकर ही तो इतवार बना है। अंग्रेजी शब्दों के केवल अद्याक्षर लेकर ही काम चलाया है, जैसे—

एन. सी. सी., यू. एन. ओ, एस, एस, आर, मिसा— **Maintanace of internal security Act. cqVk&**

### Bombay University Teachers Association

प्रयत्न लाघव के वशीभूत होकर ही संस्कृत के वैयाकरणों की एक पंक्ति बड़ी प्रसिद्ध हुई है—

“अर्धमात्रा लाघवेन पुत्रोत्सव मन्यते वैयाकरण ।”

5. **प्रयोग से घिस जाना** :- अधिक प्रयोग के कारण धीरे धीरे अन्य सभी चीजों की भांति भाषा में भी स्वाभाविक रूप से परिवर्तन होता है। संस्कृत की कारकीय विभक्तियां इसी प्रकार धीरे-धीरे घिसते समाप्त हो गईं।
6. **बल** :- जिस ध्वनि अर्थ पर अधिक बल दिया जाता है वह अन्य ध्वनियों या अर्थों को या तो कमजोर बना देता है या समाप्त कर देता है। इस संबंध में ध्वनि और अर्थ को कारण का विस्तार से विचार किया जाएगा।
7. **अनुकरण की अपूर्णता** :- भाषा अर्जित सम्पत्ति है और उसका अर्जन मनुष्य अनुकरण के सहारे समाज से करता है। अनुकरण यदि अपूर्ण हो तब तो व्यक्ति किसी शब्द को ठीक उसी प्रकार कहेंगा, जैसे वह व्यक्ति कहता है जिसका वह अनुकरण कर रहा है। इसे मुख सुख भी कहते हैं।

इस तरह अनुकरण में भाषा का परिवर्तन पनपता रहता है। जब तक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी भाषा का अनुकरण कर रही होती है, ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य भाषा के पांच क्षेत्रों में इसी छोड़ने जोड़ने के कारण परिवर्तन की प्रक्रिया तेजी से घटित होती रहती है।

आर. एम. पिडल (1926) तथा ए. डूरफेर (1927) में कुछ स्थानों पर इस बात का वर्षों तक सूक्ष्मता से अध्ययन किया। निष्कर्ष यह हुआ कि परिवर्तन या विकास का सबसे बड़ा कारण है।

अनुकरण की अपूर्णता के लिए भी कई कारण हैं जैसे—शारीरिक विभिन्नता, ध्यान की कमी, अशिक्षा।

8. **जानबूझकर परिवर्तन** :- भाषा में भी कभी कभी जानबूझकर भी उस भाषा के प्रबुद्ध बोलने वाले लेखक परिवर्तन कर देते हैं जैसे प्रसाद ने अलेक्जेंडर का अलक्षेन्द्र कर दिया। इसी प्रकार संस्कृत व देशज शब्दों का संस्कृत के साहित्यकारों ने संस्कृतिकरण किया। जैसे—  
तुर्की—तुर्क, ट्रेजेडी त्रासदी आदि
9. **जातीय मनोवृत्ति** :- हर जाति की अपनी मनोवृत्ति होती है यही कारण है कि एक ही भाषा दो या अधिक जातियों में प्रचलित होकर दो या अधिक प्रकार से विकसित या परिवर्तित होती है।
10. **भावावेश** :- प्रेम, क्रोध, शोक आदि भावों के कारण भी शब्दों का रूप बदल जाता है। जैसे अधिक प्रेम दिखाने के लिए— भाई>भैया>बबूआ>बच्चा>बेटा>बच्चुआ
11. **सादृश्य या मिथ्या सादृश्य** :- पहले से विद्यमान शब्दों के अनुरूप नये शब्दों का निर्माण करना सादृश्य” कहलाता है। इसी को मिथ्यासादृश्य भी कहा गया है। दृष्टि शब्द से दृ से सादृश्य कुछ लोग दृष्टाशब्द बनाते हैं, जबकि वस्तुतः यहां द्रष्टा होना चाहिए।
12. **मात्रा, सुर, बलाघात** :- शब्द में मात्रा, सुर तथा बलाघात के कारण भी ध्वनियों में तथा उसके परिणाम स्वरूप भाषा में परिवर्तन हो जाता है।  
**मात्रा** :- जिन शब्दों के मूल में दो दीर्घ मात्राएं साथ साथ होती हैं बाद में वह ह्रस्व होकर एक मात्रा में बोली जाती है जैसे आकाश—अकास  
**सुर** :- किसी ध्वनि को खींचकर बोलना (शब्द की)। परन्तु वाक्य या शब्द में हम सारी ध्वनियों को या शब्द का पूरा उच्चारण नहीं करते जैसे— बिल्व शब्द में इ स्वर को तीव्र सुर में बोलने के कारण ही हिन्दी में वह बेल शब्द में ए के रूप में बदल गया।  
**बलाघात** :- बलघात से अभिप्राय है, शब्द में किसी ध्वनि पर अपेक्षाकृत “बल” देकर बोलना जैसे अभ्यन्तर में भ्य पर अधिक बल देने के कारण उसके पूर्व की अ ध्वनि नष्ट हो गयी है और यह शब्द हिन्दी में भीतर के रूप में बदल गया है।  
**बाह्य वर्ण** :- जो तब भाषा के बाहर से प्रभावित करते हैं उसे बाह्य कारण कहा जाता है।
1. **सामाजिक कारण** :- समाज से अलग जैसे व्यक्ति नहीं रह सकता है वैसे ही भाषा भी। अतः समाज में जिस ढंग का वातावरण होगा वैसा ही भाषा का स्वरूप होगा। सभ्य और शिष्ट समाज की भाषा सभ्य और परिमार्जित होगी और पिछड़े और निम्न वर्ग के समाज में जो भाषा का रूप होता है वह उस स्तर से गिरा हुआ होता है। सामाजिक जीवन की क्लेश, संघर्ष और उलझनें भाषा में भी उलझनों को जन्म देती हैं। मान लीजिए यदि युद्ध का वातावरण हो तो व्यक्तियों की भाषा में जोशीले शब्दों या रोबीले शब्दों का प्रभाव या प्रचलन बढ़ जाता है ? और यदि **मूलक शब्दों** का प्रयोग अधिक होने मधुर तथा उपदेश सामाजिक वातावरण का प्रभाव भाषा पर पड़ता है और उस प्रभाव के ही परिणाम स्वरूप भाषा में परिवर्तन आ जाता है।
2. **सांस्कृतिक प्रभाव** :- मानव की सांस्कृतिक उन्नति का प्रभाव भाषा पर भी पड़ता है। इतिहास में जब—जब सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं तब तब समाज के अन्दर उथल—पुथल हुई है और भाषा में परिवर्तन हुए हैं। जैन धर्म और बौद्ध धर्म के समय में जैनियों ने अपनी भाषा को ही साहित्यिक भाषा बनाने का प्रयत्न किया था, किन्तु उसे सफलता

किमी हो या न मिली हो, यह दूसरी बात है। आर्य समाज के कारण आधुनिक समय में अनेक परिवर्तन हुए हैं और उनसे हिन्दी का स्वरूप ही बदल गया। भारत की संस्कृति पर समय-समय में अनेक संस्कृतियां ने अपना प्रभुत्व जमाया है। मुस्लिम संस्कृति के प्रभाववंश हिन्दी में कुछ ऐसे शब्द आ मिले जिन्हें हम उर्दू फारसी के शब्दों के नाम से जानते हैं। हिन्दी के क्रिया पदों तक में मुस्लिम भाषा का प्रभाव स्पष्ट ही देखा जा सकता है। इसी प्रभाव के परिणाम स्वरूप “क”, “ज” ध्वनियों का प्रयोग बढ़ा है।

अंग्रेजी और पुर्तगाली भाषाओं के प्रभाव भी स्पष्ट ही हिन्दी पर देखे जा सकते हैं। अंग्रेजी के मोटर, रेल और पोस्ट ऑफिस उर्दू के वजीर, सिफारिश, बैचेनी, कागज़ किताब आदि तथा पुर्तगालियों के कमरा, अलमारी, चूल्हा, तवा और रोटी आदि शब्द हिन्दी के अपने हो गए हैं और इनके इस अपनेपन ने भाषा को परिवर्तन की राह पर लाकर खड़ा कर दिया है।

3. **सादृश्य के कारण** :- कहते हैं खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है। इसी प्रकार भाषा में भी शब्द या वाक्य दूसरे शब्द या वाक्य की सदृशता पर उसी प्रकार के बन जाते हैं।

किसी भाव या अर्थ की अभिव्यक्ति के कारण सादृश्य के सहारे से नए शब्दों का सृजन हा जाया करता है और इस नए सृजन में भाषा परिवर्तन की राह पकड़ती है। उदाहरण के लिए— “विमलेश की लड़की कमलेश” में अंग्रेजी का सादृश्य मिलता तो वह वाक्य बना— “कमलेश सुपुत्री विमलेश। हिन्दी विभाग के अध्यक्ष के स्थान पर अध्यक्ष हिन्दी विभाग का प्रयोग अंग्रेजी में (Head of the Department) के सादृश्य निर्मित है।

इसी प्रकार— आर्ट कॉलेज—आठ कॉलेज यूनिवर्सिटी—अनवरसिटी हास्पिटल—अस्पताल, टाइम—टेम आदि।

4. **भौतिक विकास** :- भौतिक दृष्टि से हुए परिवर्तन ने भाषा को बदल डाला है। ज्ञान—विज्ञान के क्षेत्र में उसकी प्रगति के साथ भाषा की ध्वनियां शब्दकोष तथा वाक्य रचना में पर्याप्त परिवर्तन हो रहे हैं विभिन्न प्रकार की जो शब्दावली दिखाई देती है वह इस बात का प्रमाण है। विज्ञान के वरदान स्वरूप जहाँ अभी भी आवागमन के साधन उपलब्ध नहीं हैं वहाँ के निवासियों को नए शब्दों की जानकारी नहीं है। वास्तव में हम यही कह सकते हैं कि भौतिक विकास से भाषा में जो परिवर्तन आता है। वह न केवल उल्लेखनीय है अपितु अविस्मरणीय भी है।
5. **वैयक्तिक प्रभाव** :- महान् व्यक्तियों का प्रभाव भी भाषा पर पड़ता है। स्वामी दयानंद सरस्वती महात्मा गांधी आदि जैसे महान् व्यक्तियों के भावों व विचारों का प्रभाव भी भाषा में पड़ा। साहित्यिक क्षेत्र में तुलसी, कबीर आदि का व्यक्तित्व भी ऐसा ही था। तुलसी के प्रभाव से अवधी महात्माजी के प्रभाव से उर्दू, संस्कृत, अरबी, फारसी आदि शब्दों का भी प्रभाव पड़ा।
6. **वैज्ञानिक प्रभाव** :- आधुनिक तथा तकनीकी के इस युग में भाषा भी वैज्ञानिक तथा शब्दावली से समृद्ध हो गयी है। जिसको हम भाषा पर वैज्ञानिक प्रभाव कह सकते हैं। ङ, ञ, ण, न्, म् इन पाँचों अनुनासिका के स्थान पर केवल अनुस्वार (ँ) का प्रचलन होने लगा जो इसी का उदाहरण है।
7. **साहित्यिक प्रभाव** :- समय समय पर साहित्यिक परिवर्तन होता रहता है। कभी वह वीरों का स्तुति गान करता है तो कभी ईश्वर की भक्ति में अपना मन लगा देता है। कभी वह नारी की सौन्दर्य भावना को तो कभी शृंगार में रम जाता है। हर परिवर्तन एक नए प्रयोग की ओर प्रमुख होता रहता है। यह साहित्यिक प्रभाव जब अभिजात्य वर्ग की भावनों में प्राधान्य रहता है तो भाषा भी सुसंस्कृत, परिमार्जित तथा शुद्ध रहती है। कबीर की “सधुक्कड़ी” भाषा का प्रयोग इसका एक श्रेष्ठ उदाहरण है।

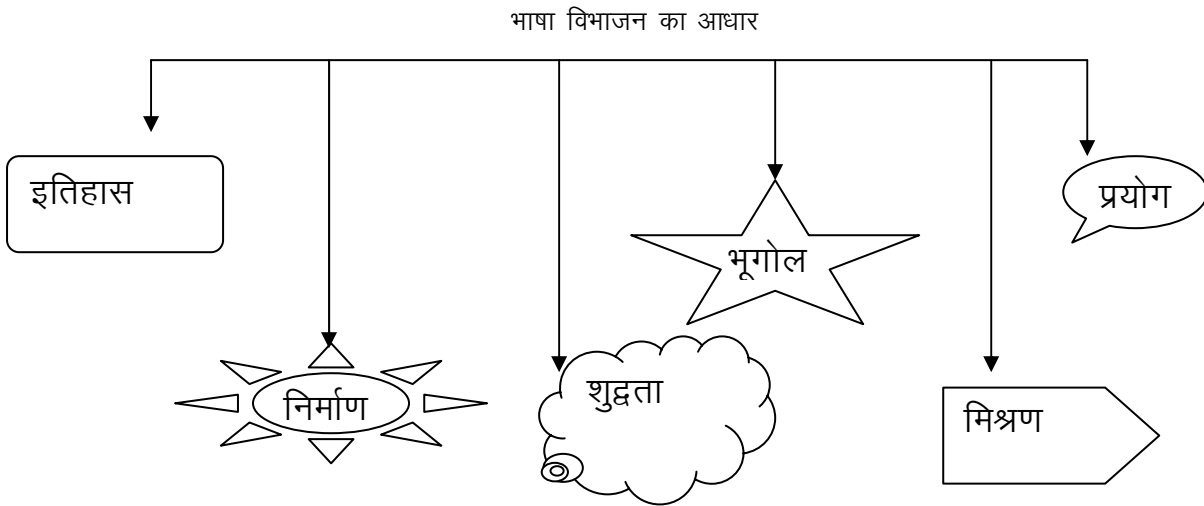
निष्कर्ष :- इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा की परिवर्तनशीलता निरन्तर बरकरार रहते हुए भी ग्रहण योग्य बनी रहती है। जिस प्रकार भोजन में अलग व्यंजनों का हमारे शरीर के बाहरी व भौतिक अंगों पर अलग अलग प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार भाषा में परिवर्तनशीलता हमें भाषा को ग्राह्य व अधिक उन्नतशील भाषा का परिचय कराती है। इन उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त ऐतिहासिक प्रभाव, जातीय प्रभाव, भौगोलिक प्रभाव भी इसमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

प्रश्न5. भाषा के विविध रूपों का परिचय दीजिए।

उत्तर भूमिका :- भाषा वह माध्यम है या साधन है जिसके द्वारा हम जो सोचते हैं तथा अपने विचारों को उससे व्यक्त करते हैं। यह एक ऐसी इकाई है जिसका संबंध व्यक्ति से लेकर समष्टि तक है। संसार का साधारण व्यक्ति जो एक कोने में पड़ा है वह किसी भाषा का प्रयोग करता है और एक विश्व विख्यात व्यक्ति भी किसी विशेष भाषा का प्रयोग करता है। काल भेद स्थान-भेद, स्तर भेद, देश-विदेश भेद आदि के आधार पर भाषाओं की अनेकरूपता दृष्टिगोचर होती है।

### भाषा विभाजन के आधार

विभिन्न आधारों पर भाषा को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है, जो निम्न लिखित छह प्रकार के हैं—

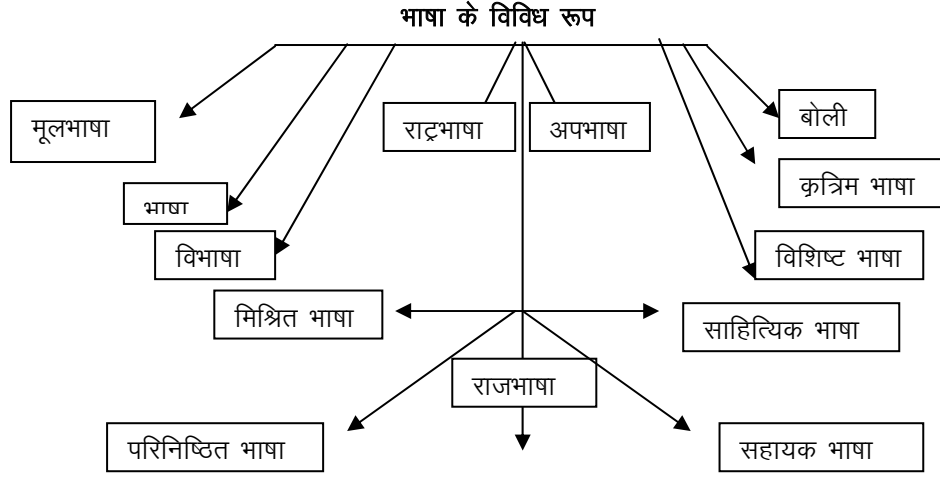


1. **इतिहास** :- इसके आधार पर मूलभाषा प्राचीन भाषा मध्य कालीन भाषा, आधुनिक भाषा आदि का उल्लेख किया जाता है।
2. **भूगोल** :- भाषा का सबसे छोटा रूप व्यक्ति बोली का है। उसके बाद स्थानीय भाषा या बोली, उपबोली बोली, उपभाषा या बोली वर्ग मिलकर भाषा का निर्माण करती हैं।
3. **प्रयोग** :- इसके आधार पर बोलचाल की भाषा, साहित्यिक भाषा, जातीय भाषा, व्यवसायिक भाषा, दफ्तरी भाषा, राजभाषा राष्ट्रभाषा, गुप्त भाषा, जीवित भाषा, मृतभाषा आदि रूप होते हैं। सहायक संपूरक, परिपूरक, सम्पर्क तथा समतुल्य भाषा नाम के भाषा रूप भी प्रयोग पर आधारित हैं।
4. **निर्माण** :- इसके आधार पर सहज भाषा, कृत्रिम भाषा।
5. **मानकता शुद्धता** :- आधार पर मानक या परिनिष्ठित भाषा, अमानक भाषा, अपभाषा आदि।
6. **मिश्रण** :- पिजिन तथा क्रियोल दो भेद होते हैं।

इन प्रकारों के अलावा अनेक ऐसे गौण आधार हैं जिनसे भाषा के विविध रूपों का विवेचन मिलता है जैसे— संस्कृति, सुबोधता ग्राह्यता आदि के आधार पर भाषा अनेक भेद व उपभेद किये जा सकते हैं। परन्तु इस आधार पर किये गये भेदों का अध्ययन प्रचलित नहीं है।

## भाषा के विविध रूप

मनुष्य समाज में रहता है यह स्वाभाविक वह नित्य अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है। तथा विज्ञान विभिन्न प्रकार की भाषा से परिचित होता है। सभी मनुष्य की भाषा एक सी नहीं होती। इस प्रकार भाषा के अनेक रूप हमारे सामने आते हैं जिनका विवेचन इस प्रकार है—



1. **मूल भाषा** :- भाषा की उत्पत्ति अत्यन्त प्राचीन काल में उन स्थानों में हुई होगी जहाँ बहुत से लोग एक साथ रहते रहें हैं ऐसे स्थानों में किसी एक स्थान की भाषा जो आरंभ में उत्पन्न हुई होगी, तथा आगे चलकर जिससे ऐतिहासिक और भौगोलिक आदि कारणों से अनेक भाषाएँ, बोलियाँ तथा उपबोलियाँ आदि बनी होंगी, मूल भाषा कही जायेगी। संसार में उतने ही भाषा-परिवार माने जायेंगे, जितनी कि मूल भाषाएँ मानी जायेंगी।
2. **अपभाषा** :- जैसा की नाम से ही स्पष्ट है कि यह भाषा का वह रूप है जिसे परिनिष्ठित एवं शिष्ट भाषा की तुलना में विकृत या अपभ्रष्ट समझा जाता है। भाषा के आदर्श रूप की तुलना में इसमें अधोलिखित विशेषताएँ मिलती हैं—
  1. अपरिनिष्ठित रूपों का प्रयोग, जैसे करा, (किया), मेरे को, (मुझे या मुझको), गवा (गया) आदि।
  2. अपरिनिष्ठित वाक्य-रचना, जैसे हिन्दी में "मैंने जाना" है या मुझ पर रूपये नहीं हैं। आदि
  3. अश्लीलता जैसे परिनिष्ठित हिन्दी में अश्लील समझे जाने वाले शब्दों का प्रयोग।
  4. परिनिष्ठित भाषा द्वारा अगृहित मुहावरों आदि का प्रयोग।
3. **विशिष्ट भाषा** :- इस प्रकार की भाषा का मूल रूप तो आदर्श रहता है लेकिन अर्थ प्रयोग और मुहावरों आदि में वर्ग विशेष की छाप रहती है।
4. **व्यक्ति बोली** :- व्यक्ति विशेष की बोली भाषाका एक लघुतम एवं संकीर्णतम रूप है। जिस प्रकार संसार की प्रत्येक वस्तु क्षण-प्रतिक्षण बदलती रहती है। वैसे ही व्यक्ति की बोली में कुछ परिवर्तन होते ही रहते हैं। अतः व्यक्ति बोली का सही अभिप्राय समय विशेष में व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त भाषा ही है।
5. **मिश्रित भाषा** :- जिसमें एक से अधिक भाषाओं का मिश्रण है। बन्दरगा हो आदि पर ऐसी भाषा प्रायः सुनाई पड़ती है। चीन के कुछ नगरों में प्रयुक्त "पिजिन इंगलिश" इसका अच्छा उदाहरण है। भूमध्य सागर के बन्दरगाहों में प्रयुक्त सबीर भाषा या मारीशस की क्रियोल भी इसी श्रेणी की है।

6. **राष्ट्र भाषा** :- इसका शाब्दिक अर्थ है राष्ट्र की भाषा। जो भाषा समूचें राष्ट्र में अधिकाधिक व्यक्तियों के लिए विचार विनिमय एवं पारस्परिक व्यावहारिकता का माध्यम हैं। उसे राष्ट्र भाषा कहते हैं। शासन की दृष्टि से एक राष्ट्र में कई राज्य या विभाग हो सकते हैं, उन विभिन्न विभागों की अलग अलग भाषाएँ होती हैं किन्तु जिस भाषा के माध्यम से एक विभाग या भाषा के लोग दूसरे विभाग या भाषा के लोगों से व्यवहार करते हैं— वह राष्ट्र भाषा कहलाती है।  
प्रो० राजकुमार शर्मा के शब्दों में :- “जब कोई प्रान्तीय भाषा राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक कारणोंवश इतनी उन्नत एवं व्यवहृत हो जाती है कि अपने प्रान्त के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण देश में परिगृहित हो जाती है तब उसे राष्ट्रभाषा कहते हैं।”
7. **राजभाषा (Official Language)**:- किसी देश या प्रदेश के राजकाज या शासन में जिस भाषा का उपयोग होता है उसे राजभाषा कहा जाता है। किसी देश की शासन सेवाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है— (1) केन्द्रीय सेवाएँ और (2) प्रान्तीय सेवाएँ। प्रान्तीय सेवाओं के लिए प्रान्तीय भाषा का प्रयोग होता है किन्तु केन्द्रीय सेवाओं के लिए प्रयुक्त भाषा “राजभाषा” कहलाती है। उदाहरणार्थ मराठी महाराष्ट्र की, गुजराती—गुजरात, बांगला—बंगाल की राजभाषा हैं।
8. **उपभाषा (Sub Language)** :- किसी एक सीमित क्षेत्र में बोली जाने वाली अधिकतम मिलती जुलती बोलियों के उसी विशिष्ट क्षेत्र की परिनिष्ठित भाषा से भिन्न समूह को उपभाषा कहते हैं। डॉ० सरोदे पाटिल के शब्दों में— “कभी कभी भाषाओं के अन्तर्गत कुछ ऐसे बड़े उपरूप मिलते हैं जिनमें हर एक के अन्तर्गत कई बोलियाँ होती हैं— उपभाषा कहलाती है।”  
उपभाषा कोई भाषा या बोली नहीं है अपितु यह कई बोलियों के समूह का अमूर्त रूप है। हिन्दी भाषा क्षेत्र में कुल पांच उपभाषाएँ हैं—

#### हिन्दी भाषाएँ क्षेत्र की उपभाषाएँ



पश्चिमी हिन्दी उपभाषा के अन्तर्गत > ब्रज, खड़ी बोली, बाँगरू, बुंदेली और कन्नौजी बोलियाँ आती हैं।

राजस्थानी हिन्दी > मारवाड़ी > जयपुरी > मेवाती > मालवी।

पहाड़ी हिन्दी > गढ़वाली > कुमाऊँनी।

पूर्वी हिन्दी > अवधी > बघेली > छत्तीसगढ़ी।

बिहारी हिन्दी > भोजपुरी > मगही > मैथिली।

इस प्रकार एक भाषा के अन्तर्गत अनेक उपभाषाएँ हो सकती हैं।

9. **बोली** :- बोली और विभाषा को लेकर पर्याप्त मतभेद हैं। बोली भाषा नहीं वरन् भाषा का वह रूप है जो सीमित क्षेत्र में बोला जाता है या घरों में बोली जाने वाली भाषा को बोली कहा जा सकता है बोली की परिभाषा डॉ० भोलानाथ तिवारी ने इस प्रकार दी है— “बोली किसी भाषा के ऐसे सीमित क्षेत्रीय रूप को कहते हैं जो ध्वनि, रूप वाक्य गठन शब्द समूह तथा मुहावरे आदि की दृष्टि से उस भाषा परिनिष्ठित तथा अन्य क्षेत्रीय रूपों से भिन्न होता है किन्तु इतना भिन्न नहीं कि अन्य रूपों के बोलने वाले उसे समझ न सकें। साथ ही जिसके अपने क्षेत्र में कहीं भी बोलने वालों के उच्चारण, रूप रचना, वाक्य गठन अर्थ शब्द समूह तथा मुहावरों आदि में कोई स्पष्ट और महत्वपूर्ण भिन्नता नहीं होती है।”
10. **बोली व विभाषा** :- विभाषा बोली का ही विकसित रूप है। जब कोई बोली अपना क्षेत्र विस्तृत कर परिमार्जित तथा शिष्ट रूप में आ जाती है तथा एक बड़े प्रान्त के निवासियों की बोली बन जाती है तब उसे विभाषा का रूप प्राप्त होता है। इसके पीछे किसी साहित्यकार का हाथ होता तो ब्रज के घरों में बोली जाने वाली सूर जैसे कवियों के हाथों पड़ी तो वह साहित्य में अवतरित हुई और विभाषा नामधारी बन गयी इसी प्रकार अवधी तुलसीदासजी द्वारा बोली के महत्त्व का कारण ?
  1. धार्मिक श्रेष्ठता से बोली महत्त्व प्राप्त करती है।
  2. बोलने वालों की महत्ता भी बोली को महत्त्व देती है।
  3. राजनीति का आश्रय पाकर भी व साहित्यकारों की प्रशंसा व प्रेरणा से भी बोली विभाषा का रूप ले लेती है।
11. **कृत्रिम भाषा** :- कृत्रिम भाषा परम्परागत या स्वभाव सिद्ध नहीं हैं। यह भाषा की सुबोधता और सुगमता को लक्ष्य रखकर बनाई गई हैं। इसी दृष्टि से डॉ० जेमन हाफ की बनाई एस्परुतो भाषा विश्व में सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं, विश्व भर में इसका प्रचार है?
12. **गुप्त या कुट भाषा** :- इसका प्रयोग प्रायः सेना गुप्तचर विभाग, चोरों, डाकुओं, क्रांतिकारियों तथा लड़कों आदि में होता है। इसका प्रमुख उद्देश्य अपनी बात को अनपेक्षित लोगों को न मालूम होने देना है। जैसे—  
दामोदर— उदर या फेटे में दाम या धन हैं  
नारायण — नाले में चलो या नाले में हैं।  
परसाद दो — जहर दो आदि।
13. **सहायक भाषा** :- वह भाषा जो सामाजिक संप्रेषण के लिए प्रयुक्त न होकर ज्ञानवर्धन के लिए प्रयुक्त होती है। जैसे संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, अवेस्ता आदि क्लासिकी भाषाएँ। इसे पुस्तकालीय भाषा भी कहते हैं।
14. **अन्तर राष्ट्रीय भाषा** :- इसी प्रकार शासन या अन्य किसी प्रभाव से जब किसी भाषा का प्रयोग एक से अधिक राष्ट्रों में होने लगता है, तो उसे अन्तरराष्ट्रीय भाषा का पद प्राप्त हो जाता है जैसे— आजकल अंग्रेजी अंतरराष्ट्रीय भाषा है।
15. **भाषा व बोली** :- भाषा का क्षेत्र व्यापक होता है तो बोली सीमित। (1) एक भाषा की अनेक बोलियाँ बोलने वाले परस्पर एक दूसरे को समझ लेते हैं। लेकिन अन्य भाषा को और उसकी बोलियों को समझने के लिए विशेष प्रयत्न एवं गहरे अध्यापन की आवश्यकता होती है। (2) बोली की अपेक्षा भाषा को अधिक मान्यता प्राप्त है। (3) बोली किसी भाषा से ही उत्पन्न होती है। इस प्रकार दोनों में माँ-बेटी का संबंध है। (4) भाषा शिक्षा, शासन और साहित्य रचना के काम की चीजें हैं किन्तु बोली दैनिक जीवन में व्यवहार योग्य होती है।

16. **बोली, विभाषा, भाषा तथा राष्ट्रभाषा का अन्तर** :- अब यदि इन सबका संक्षेप में अन्तर देखें तो पता चलता है कि बोली प्रतिदिन बोली जाने वाली घरू भाषा होती है। जिसका क्षेत्र सीमित होता है। विभाषा बोली का विकसित रूप है। जिसकी सीमा बहुत कुछ भूगोल स्थिर करता है भाषा विभाषा का संस्कृत रूप होता है जो अधिक व्यापक क्षेत्र में प्रचलित होती है और जिसकी सीमा सभ्यता संस्कृति और जातीय भावों पर निर्भर करती है सबसे ऊपर राष्ट्र भाषा होती है। जो सर्व आम और सर्वाधिक प्रचलित भाषा का विकसित रूप है और जिसका क्षेत्र सम्पूर्ण देश होता है। उक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्थानीय भाषा को बोली, प्रान्तीय भाषा को विभाषा, टकसाली भाषा को भाषा और देशव्यापी भाषा को राष्ट्रीय भाषा कहते हैं।

उपर्युक्त बिन्दुओं के अतिरिक्त भाषा के और भीरूप हैं जिनमें— जीवित भाषा, मृत भाषा, स्त्री भाषा, जाति भाषा, पुरुष भाषा, बच्चों की भाषा, संपूरक, परिपूरक समतुल्य आदि ऐसी अनेक भाषाएँ हैं जो इस भाषा में अपना स्थान रखती हैं।

प्रश्न.1 ध्वनि की परिभाषा और उसके वैज्ञानिक आधार का विश्लेषण कीजिए

उत्तर. **भूमिका** :- ध्वनि (हवनन)? विज्ञान भाषा विज्ञान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग हैं। ध्वनि-विज्ञान के अध्ययन के कारण ही भाषा के समस्त अंगों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है। ध्वनि विज्ञान वर्णनात्मक भाषा विज्ञान की आत्मा है। ध्वनि विज्ञान की महत्ता असाधारण है। भाषा विज्ञान के सुप्रसिद्ध विद्वान जॉर्ज सैम्पसन (George Sampsen) कहते हैं कि-

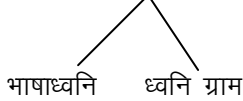
“ध्वनि विज्ञान से अनभिज्ञ भाषा शिक्षक वैसे ही निर्र्थक हैं जैसे शरीर-रचना-विज्ञान से अनभिज्ञ चिकित्सक हैं।”

भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि है और भाषा का निर्माण ध्वनि-समूहों से होता है। ‘ध्वनि’ शब्द संस्कृत का है। संस्कृत में ‘ध्वन शब्दने’ एक धातु है, उसी धातु से ध्वनि से ध्वनि नाम पहचाना जाता है। सामान्यतः कानों में पड़ने वाला कोई भी शब्द ध्वनि यंत्र के प्रमुख अवयव ध्वनि उत्पादन व योगदान, ध्वनि क्या है? किस प्रकार उत्पन्न होती है, ध्वनि संप्रेषण, आदि विषयों का निरूपण किया जाता है।

**ध्वनि का अर्थ:-**

किसी भी वस्तु से उत्पन्न किसी भी प्रकार की आवाज को सामान्य रूप से ध्वनि कहते हैं। इस दृष्टि से ध्वनि का अर्थ व्यापक और विस्तृत हो जाता है। भाषा विज्ञान के अंतर्गत ध्वनि केवल मनुष्य के मुख से निःसृत आवाज को ही माना गया है। ध्वनि के भाषा वैज्ञानिक अर्थ में केवल व्यक्तवाक् का ही अंतर्भाव होता है, अवयक्त वाक् का नहीं। भाषा का मूल उद्देश्य विचार भावों का विनिमय है। इसका मूलाधार है व्यक्त-वक्। भाषा में सार्थक ध्वनियों का प्रयोग होता है निर्र्थक ध्वनियों का नहीं। जहाँ तक भाषा विज्ञान में प्रयुक्त ध्वनि शब्द का अर्थ है वहाँ तक इस परिभाषा से काम नहीं चलता। यहाँ साधारण ध्वनि से पृथक ध्वनि की आवश्यकता होती है इसलिए ध्वनि के दो भेद होते हैं।-

**ध्वनि के भेद :-**



(Speech Sound) (Phoneme)

**भाषा ध्वनि :-**

वह ध्वनि है जिसे मनुष्य अपने मुँह से नियत स्थान से निश्चित प्रयत्न द्वारा किसी ध्येय को स्पष्ट करने के लिए उच्चरित करे और श्रोता उसे उसी अर्थ में ग्रहण करें। प्रत्येक मनुष्य भाषा ध्वनि का उच्चारण सदा एक ही ढंग से नहीं करता। एक ही शब्द को पाँच बार उच्चरित करें तो उसका उच्चारण पाँच प्रकार का होगा।

**ध्वनिग्राम :-**

ध्वनि ग्राम मिलती-जुलती अनेक भाषा ध्वनियों की वह प्रतीक ध्वनि है जिसका खण्ड हो सके। ‘काम’ शब्द में क् आ म् अ-ये चार ध्वनिग्राम अथवा ध्वनि तत्व हैं।

संस्कृत में ध्वनि विज्ञान का नाम ‘शिक्षा शास्त्र’ इस प्रकार ध्वनि का अर्थ, भाषा ध्वनि व ध्वनि व ध्वनि ग्राम का विवेचन किया गया।

**ध्वनि की परिभाषा :-**

विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मतानुसार ध्वनि की परिभाषाएँ दी हैं जो इस प्रकार हैं—

- (1) **प्रो डेनियल जोन्स (Daniel Jones)**—“ध्वनि मनुष्य के विकल्प परिहीन नियत स्थान और निश्चित प्रयत्न द्वारा उत्पादित और श्रोतेन्द्रिय—द्वारा अविकल्प रूप से गृहीत शब्दावली हैं।”
- (2) **प्रो राजकुमार शर्मा** :—“किसी वस्तु की क्रिया का ऐसा फल जो सुना जा सके, ध्वनि कहा जा सकता है। पानी में पत्थर गिरने अथवा दो वस्तुओं के टकराने अथवा घर्षण से जो आवाज उत्पन्न होगी उसे हमारे कान ग्रहण करेंगे। अतः उसे ध्वनि कहेंगे।”
- (3) **डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी** :- “मानव के ध्वनि यन्त्र द्वारा उत्पादित और निश्चित श्रावक गुणों से युक्त ध्वनि को ही भाषा—ध्वनि या भाषण ध्वनि कहा जाता है।”
- (4) **डॉ० भोलानाथ तिवारी** :-“भाषा ध्वनि जिसे मनुष्य अपने मुँह के नियत स्थान से निश्चित प्रयत्न द्वारा किसी ध्येय को स्पष्ट करने के लिए उच्चरित करे जिसे श्रोता उसी अर्थ में ग्रहण करें।”
- (5) **बाबू श्यामसुन्दर** :-“भाषा ध्वनि संकेतों का समूह मात्र है। इसी से ध्वनि में अर्थ, शब्द और भाषा सभी का अन्तर्भाव हो जाता है। ध्वनि का यह अर्थ बड़ा और व्यापक है।”

**ध्वनि अध्ययन के विभिन्न वैज्ञानिक आधार**

भाषा की सबसे छोटी इकाई वाक्य हैं परन्तु उसकी लघुतम इकाई भाषा ध्वनि हैं। ध्वनियों के संबंध में विचार करने से पता चलता है कि शुरु से इनकी तीन स्थितियाँ रहती हैं—उच्चारण, प्रसरण, श्रवण। इसी आधार पर ध्वनि विज्ञान की मुख्यतः तीन शाखाएँ मानी जाती हैं—

- (1) **औच्चारणिक ध्वनि विज्ञान** :-Articulatory Phonetics औच्चारणिक ध्वनि विज्ञान में उच्चारण और उससे संबद्ध बातों का अध्ययन किया जाता है। इसको औच्चारिका और शारीरिक ध्वनि विज्ञान भी कहा जाता है। वक्ता अपने वाग्यंत्र अर्थात्, जीभ, कंठ, मुख विवर, दाँत, कोमल तालु, स्वरयंत्र, जिहवा आदि अवयवों की सहायता से ध्वनियों की उत्पत्ति करता है। इसमें ध्वनि यंत्रों का विस्तार से अध्ययन और ध्वनियाँ वाग्यंत्र के किस-किस अवयवों से मुखरित होती हैं, का सम्पूर्ण रूप से विश्लेषण किया जाता है।
- (2) **सांवाहनिक या प्रासरणिक ध्वनि विज्ञान**:- (Acoustic Phonetics) इसमें उच्चारण के फलस्वरूप बनने वाली ध्वनि—लहरों का अध्ययन होता है। इस अध्ययन में प्रायः काइमोग्राफ, स्पेक्टोग्राफ, ऑसिलोग्राफ आदि यंत्रों की सहायता ली जाती है। भौतिकी में तो उसे केवल ध्वनि विज्ञान ही कहा जाता है। इसे सांचारिकी तरंगीय या प्रसारणिक ध्वनि विज्ञान भी कहते हैं। इसमें ध्वनि—तरंग मुख और नासिका में उत्पन्न होकर वायु पहुँचती है। इसके अन्तर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि कैसे ध्वनि लहरों द्वारा वक्ता के मुँह से श्रोता के कान तक ले जायी जाती है। ऐसा होता है कि फेफड़े से चली हवा ध्वनि—यंत्रों की सक्रियता के कारण आन्दोलित होकर निकलती है और बाहर की वायु में अपने आन्दोलन के अनुसार एक विशिष्ट कम्पन से लहरें पैदा कर देती है। ये लहरें ही सुनने वाले के कान तक पहुँचती हैं और वहाँ श्रवणेन्द्रिय में कम्पन पैदा कर देती हैं। सामान्यतः इन ध्वनि लहरों की चाल 1100—1200 फीट प्रति सेकेंड होती है ज्यों-ज्यों ये लहरें आगे बढ़ती हैं, इनकी तीव्रता घटती जाती है। इसी कारण दूर के व्यक्ति को ध्वनि धीमी सुनाई देती है।

इस प्रकार अनेक यंत्रों की सहायता से भौतिक शास्त्र में इन लहरों का बहुत गम्भीर अध्ययन किया गया।

- (3) **श्रावणिक ध्वनि विज्ञान:-** (Auditory Phonetics) इसको श्रोतिकी या श्रोतिक ध्वनि विज्ञान भी कहते हैं। इसमें इस बात का अध्ययन होता है कि हम सुनते कैसे हैं। हमारा कान तीन भागों में बँटा है—(1)बाह्य कर्ण (2)मध्यवर्ती (3)अभ्यंतर कर्ण कह सकते हैं। बाह्य कर्ण के भी दो भाग किये जा सकते हैं एक तो वह भाग है जो ऊपर टेढ़ा-मेढ़ा दिखाई देता है। दूसरा भाग छिद्र या कर्ण नलिका के बाहरी भाग से आरम्भ होकर भीतर तक जाता है। इस भाग की या कर्ण नलिका की लम्बाई लगभग एक इंच होती है। नलिका के भीतरी छिद्र पर एक झिल्ली होती है जो बाह्य कर्ण को मध्यवर्ती कर्ण से जोड़ती है।

मध्यवर्ती कर्ण एक छोटी सी कोठरी है जिसमें तीन छोटी-छोटी अस्थियाँ होती हैं। इन अस्थियों का एक सिरा बाह्य कर्ण की झिल्ली से जुड़ा रहता है और दूसरी ओर इसका संबंध अभ्यन्तर कर्ण के बाहरी छिद्र से होता है। इसके पीछे अभ्यन्तर कर्ण का प्रारम्भ होता है। इस भाग में शंख के आकार का एक अस्थि समूह होता है। इसके खोखले भाग में उसी आकार की झिल्लियाँ होती हैं। इन दोनों के बीच में एक प्रकार का द्रव्य भरा रहता है। इस भाग के भीतरी सिरे की झिल्ली से श्रावणी शिरा के तन्तु आरम्भ होते हैं जो मस्तिष्क से संबंध रखते हैं। ध्वनि की लहरें जब कान में पहुँचती हैं तो बाह्य कर्ण की भीतरी झिल्ली पर कम्पन्न उत्पन्न करती हैं। इस कम्पन्न का प्रभाव मध्यवर्ती कर्ण की अस्थियों द्वारा भीतरी कर्ण के द्रव पदार्थ पर पड़ता है और उसमें लहरें उठती हैं जिसकी सूचना श्रावणी शिरा के तन्तुओं द्वारा मस्तिष्क में जाती है और हम सुन लेते हैं।

#### **ध्वनि की उपयोगिता :-**

भाषा के अध्ययन में ध्वनि-विज्ञान अनेक प्रकार से उपयोगी होता है—

- (1) ध्वनि विज्ञान का उपयोग किसी भाषा को सीखने या सिखाने में बड़ा उपयोगी होता है। इसके द्वारा भाषा को शुद्ध रूप में सीखा जा सकता है। प्राचीन काल में इसे शिक्षा वेदाड. नाम दिया जाता था।
- (2) इसके द्वारा भाषा को सीखने सिखाने में यह बात स्पष्ट रूप से समझाई जा सकती है कि सीखने वाला किसी ध्वनि (वर्ण) का उच्चारण कौन से उच्चारणयोगी अवयव से करे तथा उच्चारण के समय कैसे प्रयत्न करे।
- (3) ध्वनि विज्ञान का उपयोग भाषा को शुद्ध-शुद्ध लिखने में भी किया जा सकता है। पहले वर्णों का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करके उनके लिए वैज्ञानिक दृष्टि से काल्पनिक लिपि चिह्न बनाये जाय और बाद में उनका उपयोग भाषा विशेष को शुद्ध लिखने में किया जाय।
- (4) ध्वनि-विज्ञान के द्वारा वर्णों का सूक्ष्म परिचय तथा उनका पारस्परिक भेद स्पष्ट होने से यह बात सहज ही ज्ञात हो जाती है कि बोलचाल में, कालान्तर में 'एक ध्वनि (वर्ण) के स्थान पर दूसरी ध्वनि (वर्ण) कैसे आ जाती है, उदाहरणार्थ:-

जगत+जननी से—जगज्जननी या तत्+गच्छति से —तद्गच्छति कैसे हो जाता है।

- (5) ध्वनि विज्ञान के द्वारा किसी प्राचीन भाषा की ध्वनियों के उच्चारण को भी जाना जा सकता है।
- (6) ध्वनि विज्ञान से परिचित भाषा वैज्ञानिक जब किसी भाषा के शब्दों का इतिहास खोजती हैं, तो वह उस शब्द की परिवर्तित या विकसित वर्तनी से भ्रम नहीं पड़ता है।

इस प्रकार ध्वनि विज्ञान भाषा वैज्ञानिकों के साथ समान पाठकों के लिए भी बड़ा उपयोगी है।

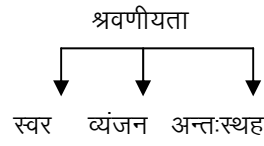
प्रश्न.2 ध्वनि का वर्गीकरण किन आधारों पर होता है ? विस्तार से प्रकाश डालिए।

उत्तर. किसी भी ध्वनि के उच्चारण में मुख्यतया तीन तत्वों का अन्तर्भाव पाया जाता है—डॉ० पीताम्बर सरोदे के अनुसार—

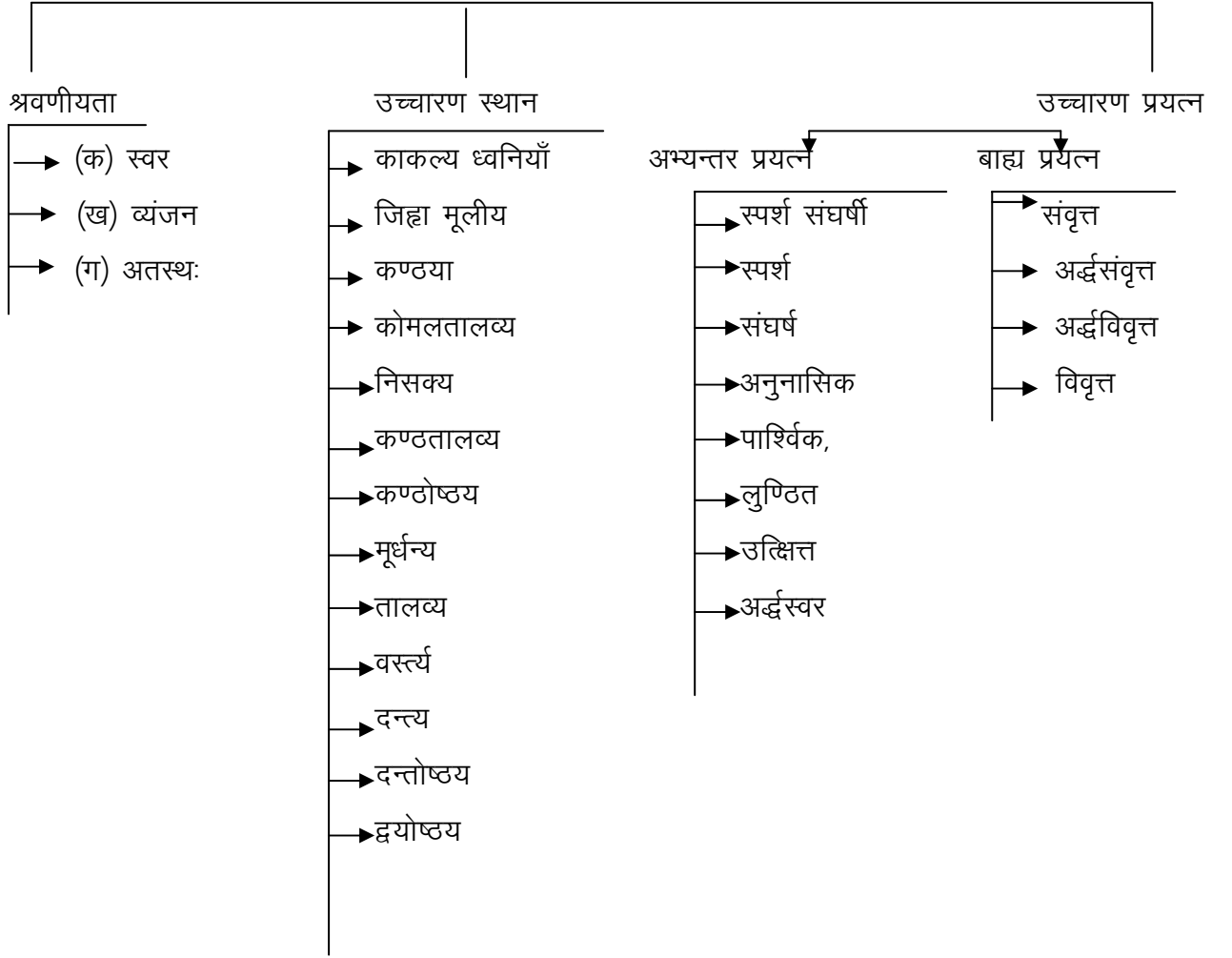
- (1) ध्वनि मुख से किस प्रकार बाहर निकलती है और उस श्रवणीयता की मात्रा कितनी है अर्थात् श्रोता उसे दूर से सुना सकता है या केवल पास आकर ही सुनता है।
- (2) ध्वनि किस वाक्अवयव द्वारा या किस स्थान से उच्चरित है।
- (3) ध्वनि—निर्मिति के समय वाक् अवयवों को कौन से प्रयत्न करने पड़े, अर्थात् वायु का निरोध और निस्सरण किस प्रकार होता है।

इन तीनों बातों के आधार पर ध्वनि—वर्गीकरण के प्रमुख तीन आधार माने जा सकते हैं जिसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।—

- (1) **श्रवणीयता** :- इसका तात्पर्य है ध्वनियों के या वर्णों के सुने जाने की योग्यता या सामर्थ्य। प्रत्येक भाषा के ध्वनि में कुछ ध्वनियाँ तो ऐसी होती हैं, जो सुनने में दूसरी ध्वनियों की अपेक्षा अधिक परिस्फुट अर्थात् स्पष्ट होती हैं और उन्हें श्रोता अपेक्षकृत अधिक दूर से भली—प्रकार सुन सकता है। श्रवणीयता के आधार पर ध्वनियों के तीन वर्ग बनाये हैं।



## ध्वनियों के वर्गीकरण के आधार



- (1) **स्वर** :—डॉ० मंगलदेव शास्त्री के अनुसार— “स्वर ऐसी सघोष आवाज को कहते हैं जिसके उच्चारण में वायु के प्रवाह की गति मुख से बिना किसी रूकावट के होती है और किसी प्रकार का सुनने में आने वाला मौखिक अवयवों का घर्षण नहीं होता है।”

—तुलनात्मक भाषाशास्त्र तृतीय सं.पृ.173

इस प्रकार स्वर वे ध्वनियाँ हैं, जिनके उच्चारण में मुख विवर सदैव कम या अधिक खुला रहता है। यह स्वयं ध्वनि स्वरों के उच्चारण में मुख विवर में जिह्वा विभिन्न आकारों को धारण करके श्वासवायु की निकलने की स्थिति में अन्तर कर देती है। तथा ऊपर या नीचे होकर मुख-विवर को कम या अधिक खुला हुआ कर देती है। इसकी विशेषता है कि स्वरों का उच्चारण देर तक किया जा सकता है। इनको अपेक्षाकृत दूर तक सुना भी जा सकता है।

- (2) **व्यंजन** :—श्रवणीयता के आधार पर ध्वनियों का दूसरा वर्ग व्यंजन कहलाता है। व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं, जिनके उच्चारण में स्वरतंत्र से बाहर निकलती हुई श्वास वायु, मुख नासिका के सन्धि स्थल या मुख विवर में कहीं न कहीं अवरुद्ध होकर या संघर्षित होकर मुख या नासिका से बाहर निकलती है। व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा आदि (करण) तालु

आदि का स्पर्श करते हैं। यही कारण है कि व्यंजनो को सामान्यतः स्पर्श तथा स्फोट ध्वनियों भी कहा जाता है। व्यंजनो का स्वरों के बिना उच्चारण कठिन होता है—

“अन्वग् भवति व्यञ्जनम्”

(3) **अंतस्थ** :—श्रवणीयता के आधार पर ध्वनियों का तीसरा वर्ग अंतस्थ कहलाता है। कभी-कभी किसी कम परिस्फुट स्वर के बाद अपेक्षाकृत अधिक परिस्फुट स्वर आ जाने से पहला स्वर बहुत ही ह्रस्व उच्चारित होता है। इस प्रकार उच्चारित स्वर अंतस्थ कहलाते हैं और व्यवहार में उनका वर्गीकरण अंतस्थ वर्ग में ही होता है, उदाहरणार्थ—य, वू अंतस्थों के उच्चारण में जिह्वा (करण) उच्चारण स्थान को पूर्णतया स्पर्श न करके उसके समीप तक पहुँचती हैं और इस प्रकार पूर्ण स्पर्श न होने से इन्हें स्पर्श नहीं कहा जा सकता यह स्वराघात वहन नहीं करते, और ना ही स्वरों के समान दूर तक सुने जा सकते हैं।

(2) **उच्चारण—स्थान के अनुसार ध्वनियों का वर्गीकरण** :—फेफड़ों से निःसृत साँस वाक्यंत्र के जिस स्थान पर रुककर ‘ध्वनि’ में परिवर्तित हो जाती है वह ध्वनि का स्थान कहलाता है। उदाहरणार्थ—“बाहर आती हुई साँस यदि काकल के पास रुककर ध्वनि में बदल, जाती है तो वह स्थान के अनुसार काकल्य कहलाती है। डॉ० कर्णसिंह ने इन उच्चारण स्थान ध्वनियों को 12 माना है वहीं डॉ० देवेन्द्र नाथ शर्मा इनकी संख्या 7 ही बताई है—

(1) काकल (2) कण्ठ (3) तालु (4) मूर्धा (5) वर्त्स (6) दन्त (7) ओष्ठ्य ।

और इसी प्रकार डॉ० पीताम्बर सरोदे ने इनकी संख्या 11 मानी है। नासिक्य को छोड़कर बाकी सारी मानी हैं।

इनका वर्गीकरण इस प्रकार है—

क्र.सं.	वर्ग	स्थान (वागवयव)	ध्वनि
1.	काकल्य	काकल	ह, विसर्ग (:)
2.	जिहवामूलीय	जिहवामूलक तथा कंठ —का पिछला हिस्सा	क, ख, ग्
3.	कंठ्य	(अ) कंठ (ब) कंठ का पिछला व जिहवा का भी (क) कंठ, नासिका	अ, आ क, ख, ग, घ ङ्
4.	कंठन्तालत्य	कंठ तथा तालू	ए, ऐ
5.	कंठोष्ठ्य	कंठ तथा ओष्ठ	ओ, औ
6.	मूर्धान्य	(अ) मूर्धा तथा जिहवा की नोक (ब) मूर्धा तथा जिहवानोक	ट, ठ, ड, ढ, ण, ऋ, व्
7.	तालव्य	कठोर, तालु तथा जिहवोपाग्र	इ, ई, च, छ, ज, झ, प, श्
8.	वर्त्स्य	वर्त्स्य तथा जिहवानोक	ने, न्ह, ल, ल्ह, र, रह,

स्, ज

9. दन्तय ऊपर नीचे के दाँतों की त्, थ, द, ध  
पंक्ति का भीतरी भाग तथा  
जिहवानोक
10. दन्तौष्ठ्य ऊपर के दाँत तथा नीचे का ओष्ठ व्, फ्
11. द्वयोष्ठ्य दोनों ओष्ठ उ, ऊ, प्, फ्, ब्, भ्, म्, म्ह, ब्
12. नासिक्य नासिका से उच्चारित (-) अं

इस प्रकार ये सब ध्वनियाँ उच्चारण स्थान से उच्चरित होने वाली ध्वनियाँ हैं।

(3) उच्चारण प्रयत्न के अनुसार ध्वनियों का वर्गीकरण :-

वागवयो द्वारा वायु का अवरोध-अनवरोध ही प्रयत्न कहलाता है। प्रयत्न विशेष रूप से दो प्रकार का होता है—

- (1) अभ्यन्तर प्रयत्न तथा (2) बाह्य प्रयत्न।

- (1) अभ्यन्तर प्रयत्न :-मुखविवर के भीतर जो प्रयत्न किए जाते हैं वे अभ्यन्तर प्रयत्न कहलाते हैं। ओष्ठ्य और कंठ के मध्य का भाषा मुख विवर कहलाता है। अभ्यन्तर प्रयत्न के भी अनेक विद्वानों ने अलग-अलग वर्गीकरण किया है। डॉ० पीताम्बर सरोदे इसके 3 भाग मानते हैं। वह अभ्यन्तर भाग हैं—1.संवृत्त 2. अर्द्ध संवृत्त 3. अर्द्ध विवृत्त मानते हैं वहीं डॉ० राजकुमार शर्मा इसके 4 भाग मानते हुए अभ्यन्तर में—1. स्पष्ट 2. ईषस्पृष्ट 3. विवृत्त तथा 4. संवृत्त मानते हैं। इनका वर्गीकरण इस प्रकार है—

- (1) स्वर्श-स्पर्श ध्वनियों में मुखविवर में एक उच्चारण (करण जैसे जिहवा, औष्ठ आदि) दूसरे उच्चारण वयव (स्थान जैसे तालु, कण्ठ, औष्ठ, दन्त आदि) का स्पर्श करता है। इस स्पर्श के कारण ये ध्वनियाँ स्वर्श कही जाती हैं। साथ ही इन ध्वनियों में दो उच्चारणवयवों के स्पर्श से पहले वायु क्षण भर को अवरुद्ध हो जाती है तथा पुनः स्फोट सहित बाहर निकलती है, अतः ये ध्वनियाँ स्फोट भी कही जाती हैं—

(क) क ख ग घ (क वर्ग) उस प्रकार—

(त) वर्ग त थ् द् ध्

(ट) वर्ग ट् ट् ड् ढ्

(प) वर्ग प् फ् ब् भ्

ये ध्वनियाँ स्पर्श मानी गयी हैं। संस्कृत में ये सभी ध्वनियाँ 25 ध्वनियों स्पर्श मानी गयी हैं।

“कादयो मावसानाः स्पर्शाः” सिद्धान्त कौमुदी।

- (2) संघर्षी :-संघर्षी ध्वनियों में मुखविवर संकरा हो जाने के कारण वायु संघर्ष करती हुई बाहर निकलती है। स्वर्श ध्वनियों की भांति इनके उच्चारण में न तो स्पर्श होता है और न ही स्फोट। हिन्दी की स् श् ष् ह् विसर्ग (:) व तथा विदेशी में प्रयुक्त ख् ग् ज् फ् आदि ध्वनियाँ संघर्षी हैं।

(3) स्पर्श संघर्षी :-जैसे इनके नाम से स्पष्ट हैं इनके स्पर्श तथा संघर्ष दोनों विशेषताएँ मिलती हैं। इनका आरम्भ स्पर्श से होता है तथा बाद में वायु संघर्ष करती हुई मुख से बाहर निकलती हैं हिन्दी की— च छ ज झ (च) वर्ग की चार ध्वनियों स्पर्श संघर्षी हैं।

(4) अनुनासिक :-जिन ध्वनियों का उच्चारण करते समय श्वासवायु मुख विवर के साथ-साथ नासिका विवर से भी निकले वे ध्वनियों अनुनासिक कहीं जाती हैं।

“मुखनासिका वचनोऽनासिकः” अष्टाध्यायी।

हिन्दी की ड, न, म्, न्ह, तथा म्ह ध्वनियाँ अनुनासिक हैं। संस्कृत में “भ” म्, ड, ण, न अनुनासिक कहीं जाती हैं। साथ ही सभी स्वर अनुनासिक भी कहे जाते हैं।

(5) पार्श्विक :-जिन ध्वनियों के उच्चारण में जिहवा ऊपर के मसूड़ों का स्पर्श करती हुई श्वास वायु का मार्ग, इस प्रकार बना देती है कि श्वास वायु जिहवा के दोनों पार्श्व से होकर बाहर निकलती हैं, वे ध्वनियाँ पार्श्विक कहलाती हैं हिन्दी की ल तथा ल्ह ध्वनियाँ पार्श्विक हैं।

(6) लण्ठित :-जिन ध्वनियों के उच्चारण में जिहवा बेलन की भाँति गोल होकर जिहवानोक से वर्स्व को जल्दी-जल्दी कई बार स्पर्श करती हुई श्वासवायु निकालने देती हैं, वे लण्ठित ध्वनियाँ होती हैं। हिन्दी में—र् र्ह ध्वनियाँ ऐसी ही हैं।

(7) उल्क्षित :-जिन ध्वनियों के उच्चारण में जिहवा की नोक शीघ्रता से उठकर उच्चारण स्थान (तालु तथा मूर्धा) की स्पर्श करे वे उल्क्षित ध्वनियाँ होती हैं— ड, ढ।

(2) **बाह्य प्रयत्न** :-वह प्रयत्न है जो मुख विवर से बाहर अर्थात् नासिक्यं स्वर तन्त्रियों तथा उर या श्वास नलिका में होता है। बाह्य प्रयत्न कहलाता है। डॉ० कर्ण सिंह ने ये चार भाग माने हैं—1. संवृत 2. अद्धसंवृत 3. अर्द्ध विवृत 4. विवृत। डॉ० राजकुमार शर्मा ने अपनी पुस्तक में डॉ० देवेन्द्र नाथ शर्मा का मत दिया है— वे बाह्य में 11 ध्वनियाँ मानते हैं 1. विवार 2. संवार 3. श्वास 4. नाद 5. अघोष 6. घोष 7. अल्प्राण 8. महाप्राण 9. उदात्त 10. अनदान्त 11. स्वरित इनका विवेचन इस प्रकार है—

(1) संवृत स्वर :-मुख द्वार के संकुचित होने पर जो स्वर निकलते हैं उन्हें संवृत स्वर कहते हैं— इ,ई और ऊ,उ।

(2) अद्धविवृत :-जब मुख द्वार आधा खुला होता है तब जो स्वर निकलते हैं, उन्हें अद्धविवृत स्वर कहते हैं जैसे—ऐ और औ।

(3) अर्द्ध संवृत स्वर :-जब मुखद्वार अर्द्ध संकुचित होता है, तब जो स्वर निकलते हैं वे अर्द्ध संवृत कहलाते हैं जैसे—ए और ओ।

(4) विवृत स्वर :-मुख द्वार जब पूर्णतः खुला होता है तब जो स्वर ध्वनियाँ उच्चारित हो वो स्वर विवृत कहलाती हैं। जैसे—अ,आ।

निष्कर्ष :-संक्षेप में कह सकते हैं कि ध्वनियों के वर्ग के आधार तो तीन हैं किन्तु विशेष महत्व स्थान और प्रयत्न को ही मिला है। डॉ० द्वारिका प्रसाद इस संदर्भ में कहते हैं कि—

“भाषा विज्ञान में स्थान तथा प्रयत्नों और कारण को आधार न बनाकर केवल स्थान और प्रयत्न के आधार पर ही ध्वनियों का वर्गीकरण किया जाता है।”

अतः ध्वनियों के वर्गीकरण स्थान उन प्रयत्न के आधार पर ही किया जाना चाहिए और किया भी जाता है। ध्वनि के क्षेत्र में आजकल और भी अधिक काम हो रहा है।

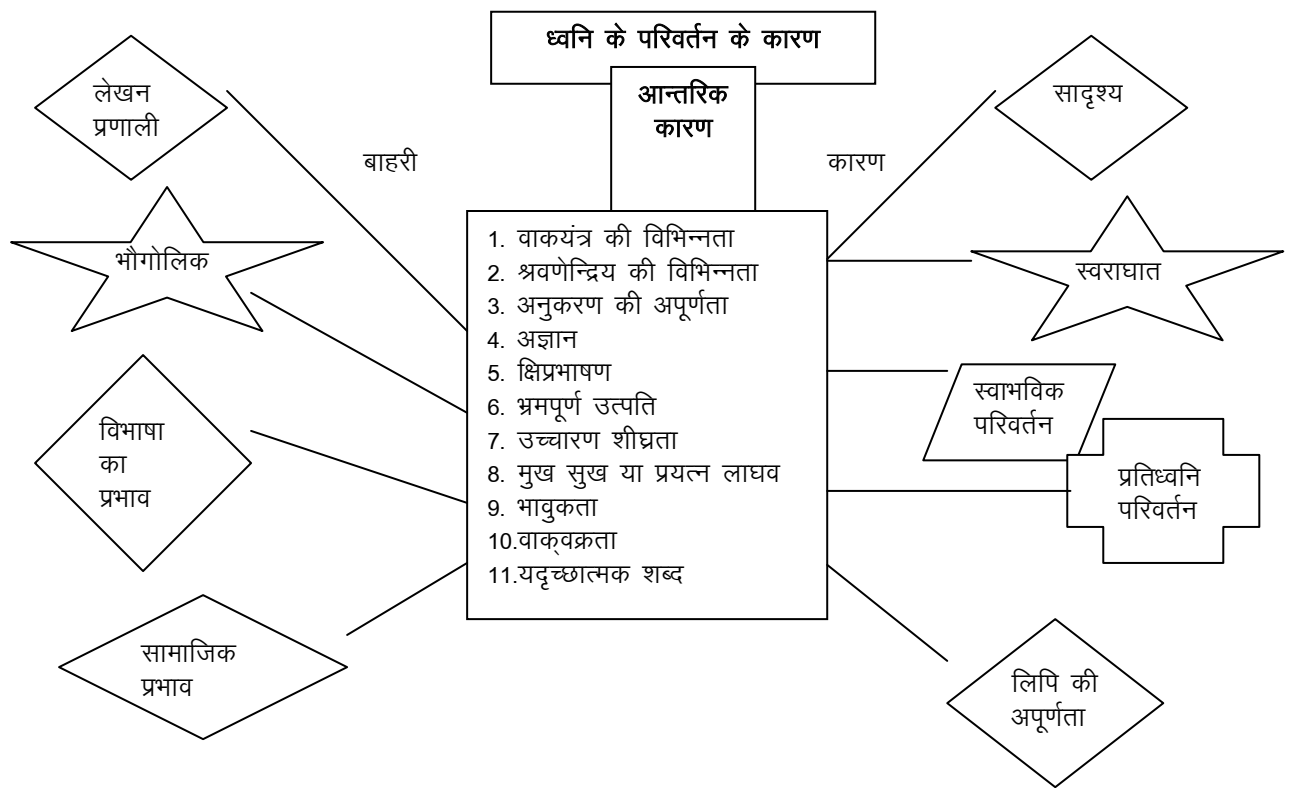
प्रश्न.1 ध्वनि परिवर्तन और उसके कारणों पर पर्याप्त प्रकाश डालिए ?

उत्तर. परिवर्तन प्रत्येक सत्ता का सहज गुण है । जीवित भाषा के साथ भी यही बात होती है। भाषा के जीवन का यह महत्वपूर्ण गुण परिवर्तन-विकार अथवा विकास भी कहा जाता है। यह परिवर्तन अथवा विकार प्रत्येक व्यक्ति करता है। भाषा का उद्देश्य है- पारस्परिक भाव-विनियम। अतः मूल रूप की रक्षा करते हुए ही जाने में अथवा अनजाने में घटित भाषा का परिवर्तन स्वीकार किया जाना चाहिए । समृद्ध भाषा में व्याकरण आदि की व्यवस्था इसी का परिणाम है। इस व्यवस्था के कारण साहित्यिक हो और चाहें असाहित्यिक, परिवर्तन स्वाभाविक है व अनिवार्य गुण भी है।

**ध्वनि परिवर्तन के कारण** :- ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी सभी कारणों का ज्ञान अभी तक नहीं हो सका है तथा परिस्थितियों के अनुसार ज्ञात कारणों की संख्या में भी परिवर्तन होता रहता है। इसलिए ध्वनि विकार दो प्रकार के कारण हैं- पहले वे जो शब्द के बाहरी वातावरण में हैं और धीरे-धीरे ध्वनि पर प्रभाव डालते हैं । दूसरे वे जो शब्दों के भीतर ही विद्यमान हैं और इनमें भीतर से ही परिवर्तन का कारण उपस्थित करते हैं ।

पहले वाले को बाह्य तथा दूसरे को आन्तरिक या अभ्यन्तर कारण कहते हैं ।

दो वर्गों में प्रस्तुत इनका विवेचन निम्नलिखित प्रकार से है ।



- (1) **आन्तरिक कारण :-**
- (1) **वक्यंक की विभिन्नता :-** किन्हीं दो व्यक्तियों का वाक्यंत्र ठीक एक प्रकार का नहीं होता, अतः किसी एक ध्वनि का उच्चारण भी दो व्यक्ति एक ही ढंग का नहीं कर सकते। प्रत्येक के उच्चारण में अन्तर मिलेगा। जब यही अन्तर कुछ समय बाद बढ़ जाता है तो स्पष्ट हो जाता है कि "ऋ" और "रि" तथा "श" और "ष" के उच्चारण इसी प्रकार धीरे-धीरे परिवर्तन होकर समान बन गए होंगे।
- (2) **श्रवणेन्द्रिय की विभिन्नता :-** भाषा जन्म के साथ नहीं आती इसे व्यक्ति सुनकर ही सीखता है। अतः श्रवणेन्द्रिय की भिन्नता भी धीरे-धीरे परिवर्तन में सहायक होती है। यह अत्यन्त सूक्ष्म कारण है इसलिए यह वाक्यंत्र भी भिन्नता से मिलकर ही चलता है। थोड़ा कहने में अन्तर और थोड़ा सुनने में अन्तर दोनों मिलकर बड़ा अन्तर उत्पन्न कर देते हैं जो काफी समय बाद बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है।
- (3) **अनुकरण की अपूर्णता :-** अनुकरण किसी को सुनकर होता है। यह पूर्ण नहीं हो पाता। अतः हम ठीक उसी प्रकार नहीं बोलते जैसे कि दूसरे बच्चों में यह अपूर्णता स्पष्टतः देखी जाती है। बड़ों में भी यह अपूर्णता मिलती है, पर सूक्ष्म रूप में। कभी-कभी यह अपूर्णता एक ध्वनि को धीरे-धीरे स्थानान्तरित करती है और कभी-कभी विदेशी शब्दों को आगे-पीछे कर देती है। जैसे अंग्रेजी के 'कनेक्शन' का 'कनेक्शन' "लाइब्रेरी" का लायनरेल रिक्रूट रंगरूट, टूयूशन का टूशन, केप्टन का कप्तान और फारसी के इन्तकाल का हिन्दी में अन्तकाल, दस्तख्त का दस्कत आदि। ब्राह्मण का बामन भी इसी का उदाहरण है।
- (4) **अज्ञान :-** अज्ञान के कारण विदेशी शब्दों अथवा देशी शब्दों का उच्चारण अशुद्ध हो जाता है। यह अपूर्ण अनुकरण जैसा ही कारण है। अज्ञान के कारण ही अंग्रेजी ध्वनि थ,द, का उच्चारण दंत्य संघर्षी के बजाय दूंत्य स्पर्शी की भांति करने लगे हैं? इसी प्रकार संस्कृत शब्दों के कितने ही "व" आज "ब" बन गये हैं।
- (5) **क्षिप्र भाषण :-** कभी-कभी अनजाने ही अथवा विवशता या स्वभावश भाषण में क्षिप्रता आ जाती है। क्षिप्र भाषण में वक्ता ध्वनियों का उच्चारण स्पष्ट रूप से नहीं कर पाता। अतः शब्दों में प्रयुक्त अनेक ध्वनियाँ लुप्त हो जाती हैं, अनेक ध्वनियाँ आधे रूप में उच्चारण की जाती हैं तथा अनेक ध्वनियाँ में परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार क्षिप्र भाषण के कारण ध्वनियों का उच्चारण अस्पष्ट होता है तथा भाषा में ध्वनिलोप, ध्वनि-भ्रातजाया से भौजाई, बाबूजी से बाऊजी, मास्टर साहब से मास्साब आदि इसी के परिणाम हैं।
- (6) **भ्रमपूर्ण व्युत्पत्ति :-** यह कारण अज्ञान जैसा ही है। यहाँ एक शब्द विशेष के अज्ञान से नहीं अपितु अनेक मिलते-जुलते शब्दों के कारण ध्वनि परिवर्तन होता है। फारसी का इन्तकाल हिन्दी में अन्तकाल इसी भ्रम के कारण हुआ है। हिन्दी में अन्त का अर्थ आखिरी और काल का अर्थ समय है। अतः समझा यह गया कि दोनों को मिला देने से अन्तकाल बन गया।
- (7) **उच्चारणात्मक शीघ्रता :-** शीघ्रता के कारण भी ध्वनि परिवर्तन हो जाता है साहित्य में लिखा जाता है "पण्डित जी" पर बोलते हैं "पण्डी जी" लिखते हैं मास्टर साहब पर बोलते हैं मास्साब। अंग्रेजी के कान्ट, शान्ट, हैंवन्ट आदि इसी के उदाहरण हैं।
- (8) **प्रयत्नलाघव या मुखसुख :-** यह परिवर्तन के समस्त कारणों में महत्वपूर्ण है। मनुष्य प्रत्येक क्षेत्र में कम से कम प्रयास में अधिक से अधिक फल चाहता है। मुख को सुख देने के लिए वह यथा सम्भव प्रयास करता है।

कभी-कभी इस प्रयास को करने के लिए वह कई ध्वनियों का उच्चारण छोड़ देता है तो कुछ में नई ध्वनियाँ जोड़ देता है । जैसे Talk, Knife, Knight walk psychology आदि में ल, क, प आदि की ध्वनियाँ सुविधा के लिए नई जोड़ी गई – स्कूल, स्टेशन आदि में “इ” की ध्वनि ।

- (9) **भावुकता** :- भावुकता के शब्दों को बिगाड़ कर विकृत रूप दे दिया जाता है । चाचा का चच्ची, चचिया, बेटी का बिटटो बच्चा का बच्चु, पुचकार का पुच्ची आदि ।
- (10) **वाक्वृत्ता** :- कभी-कभी अपनी वाणी को वृत्ता देते समय लोग बनकर बोलने लगते हैं और शब्दों की दुर्दशा कर देते हैं । उदाहरणार्थ-क्या कर रहा है ? को किया कैरिया ऐ ? बोलो मत को – बोला मती करै आदि ।
- (11) **यदृच्छात्मक शब्द** :- यदृच्छात्मक शब्द प्राचीन काल से ही भाषा का अंग रहें हैं । महाभाष्यकार पंतजलि में शब्दों के चार भेद माने हैं-जातिवाचक, गुणवाचक क्रियावाचकता यदृच्छात्मक यह शब्द अपनी इच्छानुसार जोड़ लिए जाते हैं, व्याकरण के अनुसार नहीं । हिन्दी में रोटी-वोटी, पानी-वानी, नाश्ता-वाश्ता, सुबह-बुबह आदि ।
- (11) **मात्रा, सुर तथा बलाघात** :- इन तीनों में बलाघात का महत्व सर्वाधिक है । प्रायः देखने में आता है कि बलाघात के कारण जिस ध्वनि के उच्चारण पर अधिक बल दिया जाता है उसके समीप की ध्वनि दुर्बल पड़ जाने से, बाद में लुप्त हो जाती है जैसे-अभ्यन्तर से भीतर में अ ध्वनि का लोप हो गया ।  
इसी प्रकार सुर के कारण भी परिवर्तन इस प्रकार हैं-  
कुष्ठ से कोढ़ तथा बिल्व-बेल ।  
जब दो दीर्घ मात्राएँ साथ-साथ आ जाती हैं तो उनका उच्चारण कठिन होने के कारण भी एक मात्रा प्रायः ह्रस्व हो जाती है जैसे-बाजार-बजार, आकाश-अकास आदि ।
- (2) **बाह्य कारण** :-
- (1) **सामाजिक कारण** :- सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव से भी ध्वनि परिवर्तन होता है यदि सामाजिक परिस्थिति बिगड़ी हुई है तो और दुःखपूर्ण है तो ध्वनियों का झुकाव संवृत की ओर अधिक होगा । यदि उत्तेजनापूर्ण है तो विवृत की ओर । यदि सुख ? शान्ति का वातावरण होगा तो अशुद्ध ध्वनियाँ विकसित नहीं हो पाएंगी और ध्वनि परिवर्तन बहुत कम होगा ।
- (2) **भौगोलिक प्रभाव** :- भौगोलिक प्रभाव अनेक प्रकार से पड़ता है । शीत स्थानों में विवृत से संवृत की ओर परिवर्तन होता है । गर्म देशों में संवृत से विवृत की ओर ध्वनियाँ बढ़ती हैं । यदि पहाड़ों से घिरा हुआ स्थान है तो ध्वनियों का विकास बिना किसी बाह्य आघात के स्वतंत्रता-पूर्वक होता है ।
- (3) **लेखन प्रणाली** :- यदि लिखने के ढंग में परिवर्तन आ जाता है तो उच्चारण भी बदल जाता है । अतः ध्वनियों परिवर्तन स्वतः ही हो जाती है मध्य युग में “रपू” में “रू” और “बू” का सन्देह होने के कारण “ब”का प्रयोग होने लगा थोड़े दिनों में “ब” का उच्चारण “ख” हो गया जिसके प्रभाव से-बरखा, भाखा पाखड आदि प्रयुक्त हुए । अंग्रेजी में व का प्रयोग नामों जातियों के अन्त में होता है जैसे-Rama, Mishra, Gupta, Ashoka आदि । अतः हिन्दी में भी उसी रामा, गुप्ता, बुद्धा, अशोका आदि बोलने लगे ।
- (4) **सादृश्य** :- कुछ शब्दों में ध्वनि परिवर्तन सादृश्य के कारण हो जाता है जैसे पैतीस के सादृश्य पर सैतीस में अनुनासिकता आ गयी है । संस्कृति में द्वादश के स्थान पर एकादश बन गया । इसी प्रकार क ध्वनि के सादृश्य पर सुख में भी क ध्वनि आ गयी है और सुक्ख बोला जाने लगा ।

(5) **स्वराघात** :- स्वराघात दो प्रकार के होते हैं—संगीतात्मक तथा बलात्मक । दोनों के कारण ही ध्वनि परिवर्तन होता है । संगीतात्मक में ऊँचा स्वर देने के लिए मुँह को फँसलाना पड़ता है इस प्रकार इ का ए और उ का आ हो जाता है । बलात्मक स्वराघात में किसी एक ध्वनि पर बल दिए जाने से उसकी निकटवर्ती ध्वनियों क्षीण हो जाती हैं और बाद में समाप्त हो जाती हैं डाइरेक्टर का डिरेक्टर आदि ।

(6) **स्वाभाविक परिवर्तन** :- कुछ ध्वनियाँ स्वाभाविक रूप से परिवर्तित होती हैं । अधिक प्रयोग से कुछ शब्दों की ध्वनियाँ घिसकर दूसरा रूप धारण कर लेती हैं जैसे—भया का भैया, वतन्ते—बावन्ते आदि । फारसी में स का ह होना जैसे सप्ताह का हफ्ता ।

(7) **लिपि की अपूर्णता** :- बहुत से ध्वनि विकार इसलिए भी हो जाते हैं कि सभी लिपियों में सभी भाषाओं की प्रति ध्वनि को अंकित करने वाले ध्वनि चिन्ह नहीं होते और यदि किसी लिपि में किसी विदेशी ध्वनि को अंकित करने का प्रयास किया जाता है तो उसको पढ़ने वाले कुछ का कुछ पढ़ जाते हैं । जिससे उनमें ध्वनि विकार आना स्वाभाविक है । देवनागरी लिपि ह्रस्व ओ (व) और ह्रस्व ए (म) के लिए ध्वनि चिन्ह नहीं हैं । इसलिए यहाँ **callege** को कोई कालिज, कालेज तो कोई कौलिज लिखता है । जिससे सहज ध्वनि परिवर्तन हो जाता है ।

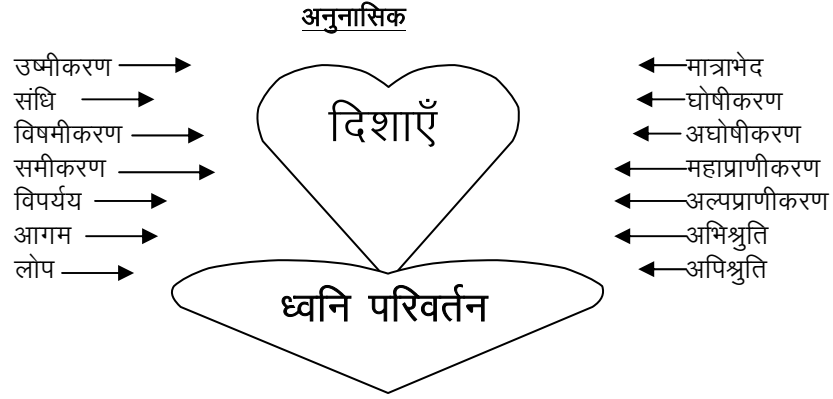
अतः लिपि की अपूर्णता के कारण भी अनेक ध्वनि विकार आ जाते हैं ।

**निष्कर्ष** :- उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि ध्वनि परिवर्तन किसी एक कारण से नहीं होता है उसके अनेक कारण हैं । इन कारणों में से कुछ कारणों का विवेचन किया गया है । भाषा परिवर्तन की राह से गुजरती हैं और इसी कारण ध्वनियों में विविध तरह का परिवर्तन आ जाता है ।

प्रश्न 4. ध्वनि परिवर्तन की दिशाओं को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर. ध्वनि परिवर्तन मुख्यतः दो प्रकार से होता है पहला—स्वयंभू अर्थात् स्वाभाविक अपने आप और दूसरा पदोद्भूत अर्थात् अन्य बाह्य प्रभावों से । स्वयंभू परिवर्तन भाषा के प्रवाह में ही हो जाते हैं । इसके लिए कोई विशेष अवस्था अथवा परिस्थिति की आवश्यकता नहीं होती है । अनुनासिकता आ जाना इसी का उदाहरण है ।

**ध्वनि परिवर्तन की दिशाएँ:**— परोद्भूत ध्वनि परिवर्तन कारण सहित होते हैं, उनके लिए विशेष अवस्था अथवा परिस्थिति की आवश्यकता होती है । कारणों के अन्तर्गत गिनाए समस्त परोद्भूत ध्वनि परिवर्तन का ही उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । अतः दूसरे प्रकार के ध्वनि परिवर्तन का ही विश्लेषण किया जाता है । इसके अनुसार परिवर्तन की 15 दिशाएँ स्थिर की गई हैं ।



(1) **लोप** :- (Elision) बोलने में शीघ्रता करने से अथवा स्वराघात से कुछ ध्वनियों का लोप हो जाता है । लोप तीन प्रकार का होता है (क) स्वरलोप (ख) व्यंजन लोप (ग) अक्षर लोप । इन तीनों के फिर तीन-तीन भेद हो सकते हैं—(1) आदिलोप (2) मध्य लोप (3) अन्तलोप । अतः लोप के नौ वर्ग हुए, तीन स्वर संबंधित तीन व्यंजन संबंधी और तीन अक्षर संबंधित ।

(1) आदि स्वर लोप:— अनाज —नाज

अभ्यंतर — भीतर

अहाता — हाता

एकादश — ग्यारह

उद्गार — उकार

(2) मध्य स्वर लोप:— अरथी — अर्थी

नरक — नर्क

अंग्रजी में:— DO NOT -DON'T

### CANNOT - CANT

(3) अन्त स्वर लोप:— आम् — आम

दूर्वा — दूब

परीक्षा — परख

वार्ता — बात

बाहु — बौह

Assisto - Assist

Affaire - affair

(1) आदि व्यंजन लोप:—संस्कृत शब्दों के आदि व्यंजन ज,श,स, का प्रायः हिन्दी में लोप हो जाता है जैसे—

ज्वलन — बलना

श्मसान — मसान

स्थाली — थाली

स्थान — थान

स्नेह — नेह

(2) मध्य व्यंजन लोप:—संस्कृत शब्दों के मध्य में आने वाले क,ग,च,ज,त,द,न,प,फ,य,र,ल,व,ष तथा विसर्ग (:) हिन्दी में प्रायः लुप्त हो जाते हैं —

चिककण — चिकना

उत्पति — उपज

कुक्कुर — कूकर

अनद्ध — आध

दुग्ध — दूध

ननान्दा — ननद

सूची — सूई

पिप्पल — पीपल

- (2) अन्तः व्यंजन लोपः—संस्कृत शब्दों के अन्त में आने वाले ब,य,र, तथा विसर्ग (:) हिन्दी में प्रायः लुप्त हो जाते हैं, जैसे—  
मूल्य — मोल  
नित्य — नित  
व्याघ्र — बाघ
- (1) आदि अक्षर लोपः—  
व्याकुल — आकुल  
त्रिशूल — शूल  
अबरेशम — रेशम
- (2) मध्य अक्षर लोपः—  
शादबाश — शाबाश  
गेहुँचना — गोचना
- (3) अन्त अक्षर लोपः—  
माता — माँ  
मौक्तिक — मोती
- (2) **आगम** :- आगम के द्वारा नई ध्वनि शब्द में आ जाती हैं इसका प्रधान कारण उच्चचरण सुविधा होती हैं । इसके भी लोप की भाँति नौ भेद हैं ।
- (1) आदिस्वरागमः—शब्द के प्रारम्भ में स्वर आ जाने को कहते हैं । यह स्वर ह्रस्व होता है । फारसी तथा फ्रेंच के लगभग उन सभी शब्दों में आदि स्वरागम हो जाता है जिनके आरम्भ में स,श,ष ध्वनियों होती हैं । हिन्दी अंग्रेजी में भी यही प्रवृत्ति मिलती है जैसे—  
स्कूल का इस्कूल  
स्पोर्ट का इस्पोर्ट
- (2) मध्यस्वरागमः—संस्कृत शब्दों के हिन्दी रूपों में प्रायः अ,इ,उ का आगम हो जाता है जैसे—  
कर्म — काम  
मिश्र — मिसिर  
स्मरण — सुमिरन आदि ।
- (3) अन्तस्वरागमः—संस्कृत शब्दों के हिन्दी रूपों के अन्त में प्रायः आ तथा उ का आगम हो जाता है जैसे—  
गुरु — गुरुआ  
गल — गला  
जी — जीउ आदि ।
- (1) आदि व्यंजनागमः— ओष्ठ — होठ  
आरंज — नारंज
- (2) मध्य व्यंजनागमः—प्रायः "क" का हिन्दी में आगम हो जाता है—  
सुख से सुक्ख

## Defence - Fence

- (3) अन्त व्यंजनागमः—संस्कृत शब्दों के हिन्दी रूपों के अन्त में प्रायः क,ब,ल,ह,ड का आगम हो जाता है जैसे अमूल्य से अमोलक, वीरूत से बिरवा आदि ।
- (3) **विपर्यय** :- किसी शब्द में किसी वर्ग अथवा अक्षर के उलटफेर अथात् इधर—उधर हो जाने को विपर्यय कहते हैं । यह तीन प्रकार का होता है—(1) स्वर विपर्यय (2) व्यंजन विपर्यय (3) अक्षर विपर्यय ।
- (1) स्वर विपर्ययः—अमिरजी से इमरती, अम्लिका से इमली ।
- (2) व्यंजन विपर्ययः—चिह्न से चिन्ह, ब्रम्ह से ब्रह्म ।
- (3) अक्षर विपर्ययः—इसके उदाहरण वैसे तो कम हैं पर कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं —महाजन से मजाहन ।
- (4) **समीकरण** :- समीकरण द्वारा एक ध्वनि दूसरी ध्वनि को इस प्रकार प्रभावित करती है कि उसे अपना ही रूप दे देती है । यह दो प्रकार का होता है— पुरोगामी व पश्चगामी । ये दोनों स्वर व व्यंजन में देखे जा सकते हैं—
- (क) स्वर समीकरणः— पुरोगामी समीकरणः—प्रथम स्वर दूसरे स्वर को प्रभावित करती है जैसे—खुरपी—खुरूपी । पश्चगामीः—प्रथम स्वर प्रथम को ही प्रभावित करता है जैसे— इक्षु—उक्खु, अंगुली—उंगली
- (ख) व्यंजन समीकरणः— पुरोगामी समीकरणः—पहली ध्वनि पहली ध्वनि को प्रभावित करती है जैसे—चक्र—चक्क,लग्न—लग्ग,यस्स—जस्स आदि ।
- पश्चगामी समीकरणः—इसमें दूसरी ध्वनि पहली ध्वनि को प्रभावित करती है— शर्करा—शक्कर,नील—लील आदि ।
- (5) **विषमीकरण** :- यह समीकरण का उलटा है । इसमें दो ध्वनियाँ एक—सी रहती हैं और एक के प्रभाव से या मुख सुख के लिए एक ध्वनि अपना स्वरूप बदल देती है ।
- (क) स्वर विषमीकरणः—
- पुरोगामीः—प्रथम स्वर ज्यों का त्यों रहता है दूसरा बदल जाता है तिलक—तिकली
- पश्चगामीः—इसमें प्रथम स्वर में विकार आता है — मुकुट—मउर,नुपूर—नुउर ।
- (ख) व्यंजन विषमीकरणः—
- पुरोगामीः— लांगूल—लंगूर, पश्चगामीः— दरिद्र—दलिद्धर आदि ।
- (6) **संधि** :- सन्धि के कारण कुछ व्यंजन जैसे प,व,य,म आदि उच्चारण में स्वर के समीप होने से स्वर में बदल जाते हैं और फिर अपने से पहले के व्यंजन में मिल जाते हैं कभी—कभी ध्वनि बदल जाती है कि पहचान में ही नहीं आती हैं जैसे—पत्नी—सोत,शत—सौ । इनके परिवर्तन की विधि यह है— सपत्नी सवतं सउत सौत, शत—अस सब सऊ सो ।
- (7) **ऊष्मीकरण** :- कभी—कभी ध्वनियाँ ऊष्म में बदल जाती हैं उदाहारणार्थ—केन्दुम वर्ग की भाषाओं की "क" ध्वनि शतक वर्ग में इसी दिशा को प्राप्त हो गई है ।
- (8) **अनुनासिकता** :- कुछ शब्दों में अकारण ही अनुनासिकता आ गई है । यदि इसका कोई कारण हो सकता है तो वह मुख सुख है । इसी कारण कुछ ध्वनियाँ ऐसी आ गयी हैं—सर्प—सॉप,ऊष्ट—ऊट,यूक—यू ।
- (9) **मात्रा भेद** :- मात्रा भेद में कभी स्वर दीर्घ से ह्रस्व और कभी ह्रस्व से दीर्घ हो जाते हैं इन पर स्वराघात का प्रभाव माना जाता है क्योंकि यह स्वयंभू ही होना संभव नहीं ।
- दीर्घ से ह्रस्वः— नारंगी—नरंगी,आलाप—अलाप, ।
- ह्रस्व से दीर्घः— अक्षत —आखत,अंकुश—ऑकुस ।

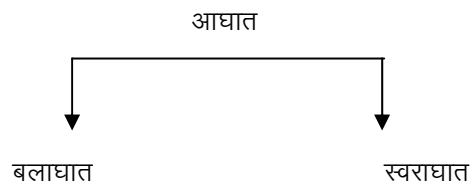
- (10) **घोषीकरण** :- उच्चारण की सुविधा के कारण कुछ ध्वनियों अघोष से घोष हो जाती हैं जैसे:-मकर-मगर,शाक-साग,धूक-धुग्धु,काक-काग आदि ।
- (11) **अघोषीकरण** :- यह घोषीकरण का उल्टा है इसके उदाहरण बहुत कम हैं । पैशाची प्राकृत में अवश्य इसके उदाहरण मिल जाते हैं:-गगन-गकन,मेघ-मेख आदि ।
- (12) **महाप्राणीकरण** :- अल्प्राण ध्वनियों का महाप्राण हो जाना महाप्राणीकरण होता है । जैसे:-पुष्ठ का पीठ,वृश्चिक का बिच्छु,गृह का घर आदि ।
- (13) **अल्प्राणीकरण** :- कुछ शब्दों में महाप्राण का अल्प्राण हो जाना अल्प्राणीकरण होता है जैसे:-धधामि का दधामि,भोधामि का बोधामि हो जाना ।
- (14) **अभिश्रुति** :- किसी स्वर अर्द्ध स्वर या शब्द में सब अपिनिहित के कारण आया हुआ स्वर परिवर्तित हो जाता है तो उसे अभिश्रुति कहते हैं । इसका उदाहरण जर्मनिक भाषा में हैं:-डंपद का डंपदप और फिर डमद हो गया डंपदप में प्रथम अपिनिहित के कारण है जिसका परिवर्तन डमद की म में हो गया ।
- (15) **अपिश्रुति** :- व्यंजनों की अपरिवर्तित दशाओं केवल स्वर में अन्तर होने से अर्थ परिवर्तन हो जाने का अपिश्रुति कहते हैं । अपिश्रुति अरबी के लगभग सभी शब्दों में पाई जाती हैं ।

प्रश्न 5. बलाघात और स्वराघात (सुर)को उदाहरण देकर समझाइए ?

उत्तर. ध्वनि गुण के अन्तर्गत मात्रा और आघात आते हैं । किसी भी ध्वनि के उच्चारण में या उच्चारण छोड़कर मौन रहने में समय की जो मात्रा लगती है उसे भाषा के अध्ययन में मात्रा कहते हैं । आघात शब्द एक्सेन्टु के प्रति शब्द के रूप प्रयुक्त किया गया है ? अंग्रेजी में एक्सेन्टु का प्रयोग भाषा विज्ञान में प्रमुख रूप से 3 अर्थों में मिलता है:-

- (1) पामर आदि भाषा विज्ञानवेत्ताओं के अनुसार यह मात्रा स्वरलहर, बलाघात ध्वनि प्रक्रिया तथा ध्वनि प्रकृति आदि अनेक इसके अन्तर्गत आती हैं ।
- (2) दूसरे अर्थ में प्रेटर्,पेई,गेनर आदि इसे "मात्रा बलाघात" का समानार्थी मानते हैं ।
- (3) तीसरे अर्थ में बलाघात, सुर या स्वराघात केवल ये दो ही चीजें इसके अन्तर्गत आती हैं। और यही अर्थ अधिक प्रचलित और मान्य हैं ।

इस प्रकार आघात दो प्रकार के होते हैं:-



- (1) **बलाघात:-** बोलते समय प्रायः यह देखा जाता है कि वाक्य के सभी अंशों पर बराबर बल नहीं दिया जाता है । कभी किसी अंश पर बल होता है तो कभी किसी अंश पर इसी प्रकार एक शब्द की भी सभी ध्वनियों पर बराबर बल या आघात नहीं पड़ता है । शब्द जब एक से अधिक अक्षरों का होता है तो इन अक्षरों पर भी बल बराबर नहीं पड़ता एक पर अधिक होता है तो दूसरे या दूसरों पर कम । इसी बल जोर या आघात को बलाघात कहते हैं । भाषा की कोई भी ध्वनि पूरी तरह बलाघातशून्य नहीं होती है ।

भेद:-सभी भाषा वैज्ञानिकों ने बलाघात के दो भेद स्वीकार किए हैं-शब्द बलाघात और वाक्य बलाघात किन्तु डॉ० भोलानाथ तिवारी ने निम्न भेद किए हैं:-

- (1) **ध्वनि बलाघात:-** वह बलाघात जो किसी एक ध्वनि स्वर या व्यंजन पर हो । यदि किसी अक्षर में एक से अधिक ध्वनियों हो तो उनमें एक ध्वनि उस अक्षर का शिखर होती है और शेष गहर । बलाघात उस शिखर पर होगा ।
- (2) **अक्षर बलाघात :-** यह वह बलाघात है जो अक्षर पर होता है । अधिक अक्षरों में से किसी एक पर बलाघात होता है । अंग्रेजी के ऑपर्टयूनिटी Copper lunity में 5 अक्षर हैं । तुलनात्मक दृष्टि से प्रथम बलाघात तीसरे अक्षर पर द्वितीय पहले पर, तृतीय पॉचवें पर, चतुर्थ दूसरे पर और पंचम चौथे पर हैं । अक्षर बलाघात ही बलाघात है ऐसा भाषा वैज्ञानिकों ने स्वीकारा है ।
- (3) **शब्द बलाघात :-** शब्द विशेष पर यह बलाघात होता है । कभी-कभी किसी विशेष शब्द पर बलाघात होता है-मोहन को तुमने मारा "या" तुमने उसे डण्डों से मारा । इससे शब्द बलाघात की स्थिति को समझा जा सकता है । डॉ० तिवारी के अनुसार तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं-
  - (1) इस रूप में बालराघात निश्चित न होकर मुक्त या अनिश्चित है । यहाँ वक्ता को छूट होती है उसे वह अपनी आवश्यकतानुसार डाल सकता है ।

- (2) इस बलाघात का सीधा संबंध अर्थ से हैं । थोड़ा भी हैं-फेर करने से अर्थ बदल जाएगा ।
- (3) शब्द बलाघात संज्ञा,सर्वनाम,विशेषण,प्रधान क्रिया और क्रिया विश्लेषण पर हो सकता हैं ।
- (4) वाक्य बलाघात:-सामान्य वार्ता के दौरान प्रायः सभी वाक्य बलाघात की दृष्टि से लगभग बराबर होते हैं,किन्तु कभी-कभी आश्चर्य, भावावेश,आज्ञा, या प्रश्न आदि से सम्बन्ध होने पर कुछ वाक्य अपने आस-पास के वाक्यों से अधिक जोर देकर बोले जाते हैं । वाक्य बलाघात के लिए-

राम-तुम जो भी कहो, मैं नहीं जा सकता ।

श्याम-वाह यह तो अच्छी रही । जिस पतरी में खाओ उसी में छेद करों और उस पर कहो कि नहीं जा सकता जाओगे कैसे नहीं ? हाथ उठाकर भागने की दिशा में फेंकते हुए भाग जाओ नांलायक कहीं के । यहाँ "भाग जाओ" पर बलाघात हैं ।

अर्थ के आधार पर बलाघात के भेद:-अर्थ की दृष्टि से बलाघात दो प्रकार का होता हैं-सार्थक बलाघात व निरर्थक बलाघात ।

- (1) सार्थक बलाघात :- जिसका अर्थ से संबंध अनविर्य रूप से होता हैं । शब्द बलाघात इसी प्रकार का हैं । इसका दूसरा रूप बलाघात प्रधान भाषाओं में अक्षर बलाघात पर दिखाई देता हैं । उदाहरणार्थ -पोली शब्द पर में "ली" पर होने से विशेषण होने के कारण इसका अर्थ "बहुत" होगा ।
- (2) निरर्थक बलाघात :- जिसके परिवर्तन से अर्थ नहीं बदलता निरर्थक बलाघात कहालाता हैं । हिन्दी में कमल में म के अ पर बलाघात हैं, किन्तु बोलने वाला उसके स्थान पर क के अ पर यदि बलाघात दे तो अस्वाभाविक होकर भी वह अर्थ में परिवर्तन नहीं ला सकता ।

इसी प्रकार निश्चय व अनिश्चय के आधार पर भी भेद किए गए हैं और येस्पर्सन ने परम्परागत मनोवैज्ञानिक और शारीरिक मनोवैज्ञानिक, बलाघात के रूप में भी भेद किए हैं । जोन्स तथा अन्य विद्वानों ने Subjectivestron और स्पष्ट Objectivestron दो भेद माने हैं ।

डॉ० तिवारी के शब्दों में यही कहा जा सकता हैं कि बलाघात मूलतः शक्ति की वह मात्रा हैं जिसमें ध्वनि शब्द या वाक्य का उच्चारण किया जाता हैं और शक्ति आधिक्य के कारण ही अपेक्षतया अधिक बलाघात युक्त ध्वनि अक्षर या शब्द आदि आसपास की अन्य ध्वनियों आदि से अधिक मुखर होती हैं ।

बलाघात के लिए निम्नांकित शारीरिक प्रयत्नों का सहारा लेना पड़ता हैं-

- (1) बलाघात की मात्रा के अनुपात में फेफड़े से काम लेना पड़ता हैं
- (2) उच्चारण अधिक शक्ति से किया जाता हैं ।
- (3) मॉसपेशियों को अधिक दृप्ता या तनाव के साथ पास्विलित किया जाता हैं उनमें सामान्य शैथिल्य नहीं रहता हैं ?
- (4) कभी-कभी बलाघात के साथ-साथ मात्रा को बढ़ाने एंवम स्वर तन्त्रियों के कंपन को तीव्र और अधिक करने आदि के लिए भी प्रयत्न करने पड़ते हैं ।
- (2) **स्वराघात:-**जब किसी ध्वनि पर विशेष बल या जोर देकर उसका उच्चारण किया जाता हैं, तब उसे आघात कहते हैं । अंग्रेजी में यह एक्सेंट कहलाता हैं और भाषा विज्ञान की शब्दावली में इसे स्वराघात या बलाघात कहते हैं । यह आघात या स्वराघात मुख्यतः तीन प्रकार का होता हैं:-
- (1) संगीतात्मक (2) बलात्मक (3) रूपात्मक

**स्वराघात**

स्वराघात का आधार स्वर यन्त्र में स्थित स्वर तन्त्रियों का कम्पन है तथा कम्पन का आधार स्वर तन्त्रियों का कम या अधिक तनाव या फैलाव है । स्वर तन्त्रियों के अधिक या कम तनाव हुआ होने पर फेफड़ों से आती हुई वायु से कम्पन अधिक या कम होती है— तथा स्वर ऊँचा या नीचा हो जाता है ।

- (1) **संगीतात्मकता:**—संगीत के आरोह और अवरोह के समय जिस तरह स्वरों में उतार-चढ़ाव देखा जाता है उसी तरह भाषा के शब्दों या वाक्यों अथवा उच्चारण पंक्तियों के उच्चारण में जो ध्वनिगत उतार-चढ़ाव प्रतीत होता है उसी को संगीतात्मक स्वराघात कहते हैं । संगीतात्मक स्वराघात केवल घोष ध्वनियों में ही देखा जाता है, अघोष ध्वनियों में नहीं। क्योंकि अघोष ध्वनियों के उच्चारण में स्वर तन्त्रियों के अन्तर्गत तनिक भी तनाव उत्पन्न नहीं होता है । उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों के प्रयोग द्वारा "संगीतात्मक" स्वराघात को अत्यधिक मात्रा में अपनाया जाता है ।

संगीतात्मक स्वराघात का सर्वाधिक प्रयोग यहाँ वेद मन्त्रों में ही होता रहा है प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के विकसित होते ही इसका लोप हो गया और तब से अब तक भारतीय भाषाओं में संगीतात्मक बलाघात का प्रायः अभाव सा ही चला आ रहा है इतना अवश्य है कि कभी-कभी बोलचाल के लिए प्रश्नवाचक वाक्य में संगीतात्मक स्वराघात अवश्य मिल जाता है । जैसे —क्या तुम घर जाओगी? वाक्य में जाओगी का उच्चारण कुछ ऊँचे स्वर में होता है । अतः यह संगीतात्मक स्वराघात है ।

- (2) **बलात्मक स्वराघात:**—बलात्मक स्वराघात का संबंध फेफड़ों से है । अतः इसमें सुर ऊँचा-नीचा नहीं किया जा सकता इसमें केवल बल के साथ उच्चारण ही होता है किस पर बलात्मक व स्वराघात होता है । हिन्दी के सवैयों और कवितों में, विशेष रूप से डिंगल में रचित छन्दों में, बलात्मक स्वराघात मिलता है । गणों का स्वरूप नियत होने पर ब्रज अवधी और खड़ी बोली में भी सवैयों में दीर्घ वर्ग ह्रस्व इसी स्वराघात के कारण हो जाते हैं । गाथी भाषा में बलात्मक स्वराघात के कारण संस्कृत के पिता रह गए । इसमें अन्तिम आ पर बल था बलात्मक स्वराघात अंग्रेजी के शब्दों में अर्थ परिवर्तन का कारण भी बन जाता है । उदाहरणार्थ:—"कनडक्ट" शब्द ले सकते हैं इस शब्द में यदि बलाघात आरम्भ में होगा तो यह संज्ञा होगा और यदि बलाघात हटा कर डी पर कर दिया जाए तो यह क्रिया होगा ।

हिन्दी में शब्दों के उपान्त पर बलाघात होता है । अतः अन्तिम अक्षर हल हो जाते हैं ।

- (3) **रूपात्मक स्वराघात:**—इसमें न तो स्वर ऊँचा-नीचा होता है और न अधिक बल दिया जाता है इस स्वराघात को रूपात्मक स्वराघात कहते हैं । यह स्वर तन्त्रियों की बनावट पर आधारित है । प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक संरचना में भेद होता है स्वर तन्त्रियों भी एक-सी नहीं होती किसी की बड़ी तो किसी की छोटी होती है यही कारण है कि व्यक्तियों की पहचान उनकी आवाज से हो जाती है । यह रूपात्मक स्वराघात के ही कारण होता है ।

इस प्रकार स्वराघात का संबंध भाषा से न होकर केवल बोलने में ध्वनि मात्रा से है । अतः इसका महत्व अधिक नहीं है । प्रमुख भेद दो ही हैं — संगीतात्मक तथा बलात्मक स्वराघात ।

**निष्कर्ष:**— इस प्रकार संक्षेप में कह सकते हैं कि भाषा में ध्वनियों के उच्चारण के लिए ध्वनि गुणों का ज्ञान परमावश्यक है । इससे हम किसी भाषा-विशेष को सीखने में उसकी ध्वनि गुणों का ध्यान रख सकते हैं । स्वराघात व बलाघात का उपयोग कुछ भाषाओं में अधिक और कुछ भाषाओं में न्यून दिखाई देता है । उदाहरण के लिए अवेस्ता, लैटिन आदि प्राचीन भाषाओं में तथा अंग्रेजी, रूसी आदि आधुनिक भाषाओं में बलाघात की प्रधानता है ।

संसार की कुछ भाषाओं में बलाघात की मात्रा कम है। अघोष ध्वनियों में इसकी स्थिति कम रह जाती है। हिन्दी में भी यही प्रवृत्ति है।

प्रश्न.6 "ध्वनि नियम" से आप क्या समझते हैं ? कतिपय ध्वनि नियमों को स्पष्ट समझाइये।

उत्तर. ध्वनि नियम:—जब कोई क्रिया कुछ विशेष परिस्थितियों में प्रत्येक देश और प्रत्येक काल में समान रूप से होती है तो उसे नियम कहते हैं। जिस प्रकार प्रकृति के अनेक कार्यों को देखकर कुछ सामान्य और विशेष नियम बनाये जाते हैं उसी प्रकार ध्वनियों में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर ध्वनि नियम बनाये जाते हैं। नियमों में एकरूपता जब अधिकांश स्थलों पर मिलती है तो उसके आधार पर ध्वनि-नियम स्थिर किये जाते हैं, किन्तु प्राकृतिक नियम और ध्वनि नियम में अन्तर यह है कि "ध्वनि नियम" प्राकृतिक नियमों के समान सार्वदेशिक एवम् सार्वकालिक नहीं होते बल्कि उनका कार्य क्षेत्र सीमित और काल निश्चित होता है।

#### डॉ० मंगलदेव व शास्त्री के अनुसार—

भिन्न-भिन्न भाषाओं में एक ही काल में तथा एक ही भाषा में भिन्न-भिन्न कालों में होने वाले ध्वनि विकारों को ठीक-ठीक रूप से तुलनात्मक परीक्षा करने से हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ये विकार सामान्यतः सभी भाषाओं में पाए जाते हैं तथा प्रत्येक भाषा की ध्वनियों में इन विकारों के घटित होने के कुछ नियम निश्चित हुआ करते हैं। इन्हीं को ध्वनि नियम कहा जाता है।

#### डॉ० पी.डी.गुणे कहते हैं—

ध्वनि नियम सर्वथा पूर्ण नहीं होते हैं और उनमें देशकाल की सीमा होती है।

श्री टी.जी.टकर के अनुसार—

'A Phonetic law of a language is statement of the regular practice of that language at a particular time in regard to the treatment of a particular sound or group of sound in a particular setting'

अर्थात् किसी भाषा के ध्वनि परिवर्तन संबंधी नियम से अभिप्राय उस कथन से है जिसमें किसी विशेष ध्वनि काल और विशेष परिस्थिति में उस भाषा के विशेष वर्ण या वर्ण समूह में नियमित रूप से होने वाले परिवर्तनों का उल्लेख होता है।

#### डॉ० भोलानाथ तिवारी के मतानुसार—

किसी विशिष्ट भाषा की कुछ विशिष्ट ध्वनियों में किसी विशिष्ट काल और विशिष्ट दशाओं में हुए नियमित परिवर्तन या विकार को भाषा का ध्वनि नियम कहते हैं।

#### प्रो० राजकुमार शर्मा के अनुसार—

ध्वनि नियम वस्तुतः एक निश्चित काल के भीतर होने वाले किसी एक भाषा के अथवा किन्हीं अनेक भाषाओं के ध्वनि विकारों का कथन मात्र है।

अतः प्रत्येक ध्वनि नियम में सदैव निम्नलिखित तथ्य स्मरणीय है या महत्त्वपूर्ण माने जा सकते हैं—

- (क) वह नियम किस काल से सम्बन्धित है?
- (ख) किस भाषा अथवा भाषाओं पर घटित होता है?

(ग) किस प्रकार सीमाओं के भीतर वह कार्य करता है?

उपर्युक्त विवेचन को देखते हुए ध्वनि-नियम की निम्नलिखित विशेषताओं की ध्यान में रखना आवश्यक है—

- (1) यद्यपि ध्वनि-नियम भौतिक विज्ञान आदि के नियमों की भाँति सुनिश्चित तथा व्यापक नहीं होते, तथापि ध्वनियों में होने वाला परिवर्तन बहुत सीमा तक नियमित ही होता है। इसी आधार पर ध्वनि-विज्ञान विज्ञान कहलाता है।
- (2) एक बार प्रारम्भ हुआ ध्वनि-परिवर्तन कभी रुकता नहीं है, अपितु दिशा विशेष में अग्रसर होता रहता है।
- (3) प्रत्येक ध्वनि-नियम का संबंध काल विशेष से होता है उससे भिन्न काल की ध्वनियों पर वह सार्थक नहीं होता है।
- (4) प्रत्येक ध्वनि-नियम देश-विशेष से संबंध रखता है, उससे बाहर की भाषा-ध्वनियों पर वह लागू नहीं होता है।
- (5) प्रत्येक ध्वनि परिवर्तन प्रारम्भिक काल में एक प्रवृत्ति के रूप में होता है, जब प्रवृत्ति स्थायी हो जाती है, तो वह ध्वनि-नियम बन जाती है।

अतः प्रत्येक ध्वनि नियम किसी भाषा की भूतकाल की ध्वनियों से संबंध रखता है पहले वह प्रवृत्ति के रूप में रहता है धीरे-धीरे स्थायी बन जाने पर प्रवृत्ति नियम का रूप ले लेती है। इस प्रकार किसी भी ध्वनि-नियम को भौतिक विज्ञान आदि के नियमों की भाँति सुनिश्चित तथा सार्वदेशिक-सार्वकालिक नहीं माना जा सकता है।

कुछ प्रसिद्ध ध्वनि-नियम

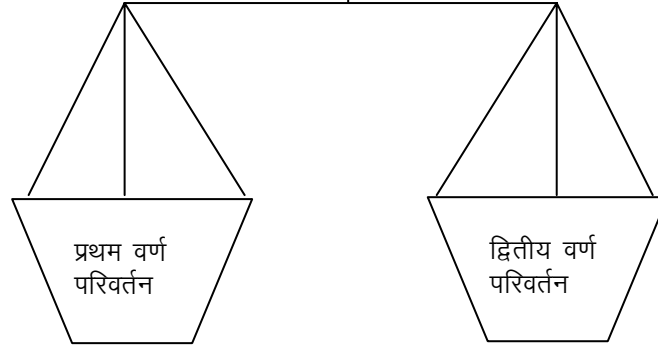
- |                 |                   |
|-----------------|-------------------|
| (1) ग्रिम-नियम  | (2) ग्रासमान नियम |
| (3) वर्नर नियम  | (4) सादृश्य नियम  |
| (5) तालव्य नियम | (6) मूर्धन्य नियम |
| (7) ग्रीक नियम  | (8) लैटिन नियम    |

**ग्रिम नियम:—**

ध्वनि-नियमों के अन्तर्गत प्रसिद्ध ध्वनि नियम ग्रिम नियम हैं। इस नियम की ओर ग्रिम से पूर्व भी संकेत किया जा चुका था, किन्तु इसके संबंध में पूरे विवरण और विस्तार के साथ तथ्यों का विश्लेषण ग्रिम ने ही किया। यही कारण है कि यह नियम ग्रिम के ही नाम से प्रसिद्ध हो गया। ग्रिम ने 1919 ई. में जर्मन भाषा का व्याकरण छपवाया। जब उसका दूसरा संस्करण निकला तो उसमें ग्रिम ने जर्मन भाषा का वर्ण परिवर्तन संबंधी नियम प्रकाशित कराया। यही आगे चलकर ग्रिम नियम कहलाया।

पहले उसे निर्दोष माना गया। उसका परिष्कृत नियम जिस रूप में प्रचलित है उसका परिचय अपेक्षित है। ग्रिम के दो भाग हैं—

## ग्रिम नियम



“प्रथम वर्ण परिवर्तन का उद्देश्य क्लासिकल वर्ग की भाषाओं का निम्न जर्मन वर्ग की भाषाओं से संबंध दिखाना है। यह वर्ण परिवर्तन ईसा से बहुत पहले निम्न जर्मन वर्ग की भाषाओं के अलग-अलग विकसित होने से पहले ही हो चुका था। द्वितीय वर्ण परिवर्तन का उद्देश्य निम्न जर्मन वर्ग की भाषाओं का उच्च जर्मन वर्ग की भाषाओं से संबंध दिखाना है। यह दूसरा परिवर्तन उत्तरी जर्मनी से एंग्लो-सेक्शनों के पृथक होने के बाद ईसा की सातवीं शदी के आस-पास हुआ। इसका विशेष संबंध केवल द्यूटानिक भाषाओं से है।

**प्रथम वर्ण परिवर्तन** :- ग्रिम नियम के प्रथम वर्ण परिवर्तन और द्वितीय वर्ण परिवर्तन का परिचय डॉ० तिवारी और प्रो० जगदीश नारायण बंसल के निबन्ध के आधार पर दिया जा रहा है—

प्रथम वर्ण परिवर्तन में मूल भारोपीय भाषा के कुछ स्पर्श (व्यंजन वर्णों का एक भेद) परिवर्तित हो गए थे अर्थात् मूल भारोपीय के क वर्ग त वर्ग और प वर्ग के चतुर्थ तृतीय और प्रथम वर्ण निम्न जर्मन शाखा में क्रमशः तृतीय प्रथम और द्वितीय हो जाते हैं। केवल द्वितीय वर्ण की ध्वनियाँ स्पर्श न रहकर ऊष्म हो जाती हैं। इसे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

- (क) मूल भारोपीय के ध् घ् भ् निम्न जर्मन में ग् द् ब् हुए।  
 (ख) मूल भारोपीय के ग् द् ब् निम्न जर्मन में क् त् प् हुए।  
 (ग) मूल भारोपीय के क् त् प् निम्न जर्मन में ख् (ह्) थ् फ् ध् घ् भ् ।

इसके स्पष्टीकरण के लिए सुविधा के दृष्टिकोण से मूल भारोपीय तथा निम्न जर्मन के स्थान पर क्रमशः संस्कृत और अंग्रेजी से उदाहरण ले रहे हैं—

- (क) घ् ध् भ्           से       ग् द् ब्  
 धन               से       Gong  
 से विधुर से       Widower  
 भ्रु               से       Brow  
 (ख) ग् द् ब् से       क् त् प्  
 गौ               से       Cow

	द्वौ	से	Lwo
	बाधन्	से	Pain
(ग)	क् त् प्	से	ख् (ह) थ् फ्
	कः	से	Who (मूलतः hwo&oks)
	तनुः	से	Thin
	पद	से	Foot

**द्वितीय वर्ण परिवर्तन** :- इस वर्ण परिवर्तन में ग्रिम ने निम्न जर्मन तथा उच्च जर्मन में हुए परिवर्तन समझाये। दूसरा परिवर्तन इस प्रकार हुआ।

निम्न जर्मन		उच्च जर्मन
ग्,द,ब्	से	क्,त्,प्
क्,त्,प्	से	ख् (ह) स्,फ्
ख (ह) थ्,फ्	से	ग्,द,ब्
ध्,ध्,म्		

स्पष्ट ही यह नियम सुलझा हुआ है, परन्तु ग्रिम भी इस नियम के सभी उदाहरण प्रस्तुत न कर सके।

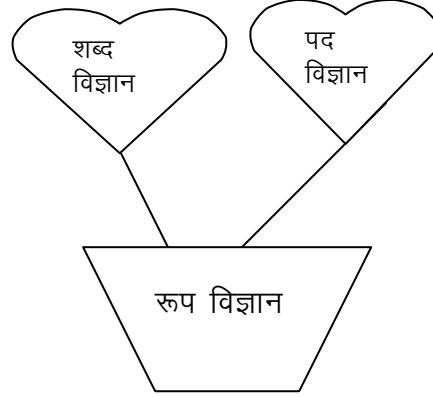
**प्रो० बंसल ने ठीक ही लिखा है कि:-** 'इस नियम के अपवाद इतने अधिक थे कि दूसरा वर्ण परिवर्तन अवैज्ञानिक प्रतीत हुआ'।

यही कारण है कि ग्रिम के इन दोनों नियमों में से प्रथम वर्ण परिवर्तन को ही स्वीकार किया गया, यद्यपि उसमें भी बहुत से अपवाद पाये गये। इनके समाधान के लिए कई नियमों और उपनियमों का पता लगाया गया। स्वयं ग्रिम ने भी इस नियम से संबंधित कुछ आपत्तियों का समाधान करते हुए उपनियम बनाये शेष को ग्रिम परवर्ती विद्वान 'ग्रासमान' तथा 'वर्नर' ने समझाया वास्तव में इन परवर्ती विद्वानों के नियम ग्रिम नियम के ही उपनियम माने जाते हैं।

**ग्रिम के उपनियम:-** ग्रिम नियम संयुक्त वर्णों में नहीं लगता है। उसका संबंध असंयुक्त वर्णों से है। अतः कूल भारोपीय के+स्क+स्त+रूप के क् त् प् से स् संयोग के कारण कोई विकार नहीं होता। इसी प्रकार मूल भारोपीय के+क्त+और+प्त में भी त् अधिकृत रहता है। उदाहरणार्थ 'अष्टों' से बीज (अखट) तथा 'नत्ता' से छपजि (निफट)।

प्रश्न.1 शब्द और पद निर्माण की प्रक्रिया को समझाते हुये शब्द और पद के अन्तर को स्पष्ट कीजिए?

उत्तर. भाषा विज्ञान का वह अंग,जिसके अन्तर्गत शब्दों,शब्द रचनात्मक प्रत्यायों,पदों,पद-रचनात्मक प्रत्यायों का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण विवेचन किया जाता है,रूप विज्ञान कहलाता है। रूप (फॉर्म,आकृति) का अध्ययन सतही तथा आन्तरिक (गहन) दोनों स्तरों पर किया जाता है। रूपवादी सतही अध्ययन को महत्व देते हैं जबकि अर्थविज्ञानी गहन अध्ययन को भी प्रश्रय देते हैं। अध्ययन सामग्री तथा क्षेत्र की दृष्टि से रूपविज्ञान के दो भाग हैं—



1. **शब्द विज्ञान**—भाषा हमारे विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति का सबसे बड़ा व सशक्त माध्यम है और शब्द उसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई हैं। जिस व्यक्ति का शब्द भण्डार जितना ही अधिक होगा,वह अपनी अभिव्यक्ति में उतना ही अधिक सफल सिद्ध होगा। जिस भाषा में जितना अधिक शब्द भण्डार होगा,वह उतनी ही अधिक सम्पन्न एवं लोकप्रिय भाषा होगी। अतः शब्द के विभिन्न रूपों एवं प्रकारों का सम्यक् ज्ञान भाषा के सफल प्रयोक्ता की सबसे पहली आवश्यकता है।

(1) **शब्द का महत्व** :- 'वाक्यपदीय' के रचयिता महर्षि 'भृहृहरि' ने तो शब्दों का महत्व प्रतिपादित करते हुए यहाँ तक कहा है—

शब्दवेवाश्रिता शक्तिविश्वस्यास्य निबन्धनी ।

यन्नेत्रः प्रतिभात्याय भेद रूपः प्रतीयते ।

अर्थात् इस संसार को निबद्ध करने वाली सशक्ति शब्दों में ही आश्रित हैं। शब्दों के माध्यम से देखने के कारण ही व्यक्तियों की आत्मा भिन्न-भिन्न प्रतीत होती है।

भृहृहरि ने लिखा है—

तस्मादयः शब्द संस्कारः सा सिद्धि परमात्मनः

तस्य प्रवृत्ति तत्त्वज्ञः तद ब्रह्ममृत मश्नुते ।

अर्थात्—शब्द का संस्कार करना परमात्मा की सिद्धि प्राप्त करना है। जो शब्द की प्रवृत्ति के तत्व को जान लेता है वह ब्रह्म के अमरत्व को जान लेता है।

(2) शब्द विषयक विभिन्न मतः—शब्द के विषय में विभिन्न मत प्रचलित हैं। इन मतों को डॉ०सरनाम सिंह शर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी भाषा: रूप विकास' में बड़े कौशन के साथ प्रस्तुत किया है अतः उनके द्वारा प्रस्तुत विभिन्न मतों का वर्णन इस प्रकार है—

**कपिल का मत:**—सौख्य तत्वज्ञान के आद्य पुरुष कपिल मुनि ने शब्द को प्रकृति का विकार बतलाया है। प्रकृति जड़ है, व्यापक है। आकाश प्राकृतिक है और उसकी उत्पत्ति शब्द तन्मात्रा से हुई है। तन्मात्रा की कल्पाना 'परमाणु' शब्द से ही हो सकती है।

**गौतम-कणाद का मत:**—न्याय दर्शन के अग्रणी गौतम मुनि से तथा वैशेषिक दर्शन के पुरोधा कणाद मुनि ने शब्द को आकाश का गुण बतलाया है। कदम्बगोलक न्याय अथवा वागचितरंग न्याय से शब्द को उससे प्रसारित माना है।

**जैन मत:**—जैन मत मुख्यतः दो तत्वों को स्वीकारता है:—चेतन और जड़। जड़ के दो रूप हैं एक मूर्त और दूसरा अमूर्त। पुदगल मूर्तकोटी का जड़ कहलाता है और आकाश अमूर्त कोटि का। शब्द मूर्तिमान है, इसलिए जड़ पुदगल का विशेष प्रकार का परिणाम है।

मूल द्रव्यग्राही दार्वाथिक नय की दृष्टि से 'शब्द' नित्य कहलाता है। और परिणाम—ग्राही पयार्थिक नय दृष्टि से शब्द अनित्य माना जाता है।

बौद्धमत:—बौद्ध परम्परा की दृष्टि से समग्र विश्व पंच स्कन्धात्मक है। उनमें से रूप स्कन्ध में 'शब्द' का समावेश यह मत शब्द के भौतिक स्वरूप को स्वीकारता है।

**पतंजलि और भर्तृहरि का मत:**—महान वैयाकरण पतंजलि ने और वाक्यपदीय के प्रणेता भर्तृहरि ने स्फोटरूप निरवयव शब्द को नित्य कहा है और मुखादि द्वारा ध्वन्यमान शब्द को अनित्य कहा है। इन दोनों वैयाकरणों ने शब्द का परमाणु होना स्वीकार किया है।

'अनादिनिधन शब्द ब्रह्मतत्त्वं, यद् अक्षरम्।

विवर्तेअर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।

अर्थात्—'अनादि, अनन्त और अक्षरात्मक शब्द ब्रह्म रूप में विवर्त पाता है और उससे जगत की प्रक्रिया चल रही है।

इस प्रकार महर्षियों ने शब्द तत्व के दर्शन को अलग-अलग दृष्टियों से निरूपित किया है।

**शब्द निर्माण प्रक्रिया:**—शब्द बनाने के लिए उपसर्ग (पूर्व प्रव्यय) और प्रत्यय दोनों ही आवश्यकतानुसार जोड़े जाते हैं। उपसर्ग जोड़ने से मूल के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है जैसे—विहार, संहार, परिहार आदि में प्रत्यय जोड़कर उसी के अर्थ के शब्द या पद बनाए जाते हैं।

**शब्द व पद में अन्तर:—**

पहले पहल व्याकरणाचार्यों ने शब्द को पद नाम से ही पुकारा था। यही कारण है कि भर्तृहरि ने पद व्यवहार के अन्तर्गन अनेक पुराने आचार्यों का मत उद्धृत करते हुए लिखा है—

'कोई आचार्य पद के चार भेद करता है नाम आख्यत, उपसर्ग और निपात तथा कोई आचार्य कर्म प्रवचनीय की पृथक् सत्ता मानकर पद के पाँच भेद करता है'।

इससे स्पष्ट है कि जिन पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों को भर्तृहरि ने उद्धृत किया है, वे शब्द को ही पद मानते रहें हैं, परन्तु शब्द और पद में पर्याप्त अन्तर होता है—

- (1) शब्द पूर्ण तथा स्वतन्त्र होता है जबकि पद वाक्य के अनुकूल होने के कारण परतन्त्र होता है।
- (2) शब्द के साथ विभक्ति व परसर्गों का योग नहीं होता जबकि पद का निर्माण ही विभक्ति एवं परसर्गों द्वारा होता है।

- (3) शब्द वाक्य में प्रयुक्त होने के लिए सर्वथा अयोग्य होता है, जबकि पद में वाक्य के अन्तर्गत प्रयुक्त होने की पूर्ण योग्यता होती है।
- (4) डॉ० कर्ण सिंह ने लिखा है—'कभी—कभी मूल शब्द तथा वाक्य प्रयुक्त पद या रूप में कोई स्वरूपगत भेद दिखाई नहीं पड़ता है। ऐसे स्थलों पर सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि शब्द वाक्य में प्रयुक्त है और उसका अन्वय ठीक हो रहा है तो वह पद ही है शब्द नहीं क्योंकि मुख्य नियम यही है कि बिना पद बने किसी भी मूल शब्द का वाक्य में प्रयोग ही नहीं हो सकता है।
- (5) डॉ० देवेन्द्रनाथ शर्मा ने शब्द और पद के अन्तर को संक्षेप में किन्तु स्पष्टतया समझाया है—'संस्कृत के आचार्यों ने शब्द के दो भेद किए हैं—शब्द और पद। शब्द से उनका तात्पर्य विभक्ति रहित शब्द से है जिसे प्रतिपादिक भी कहते हैं। पद शब्द का प्रयोग उस शब्द के लिए किया जाता है जिसमें विभक्ति लगी है।

शब्द और पद के उपर्युक्त विवेचन से इन दोनों का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। इस स्पष्ट विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनों में कितना अन्तर है। वास्तविकता यह है कि शब्द और पद मूल रूप से एक होते हुए भी अलग—अलग होते हैं। उनमें अन्तर इतना है कि शब्द असिद्ध प्रयोग होते हैं और पद सिद्ध प्रयोग।

- (3) **पद विज्ञान** :- कोई शब्द किसी वाक्य में प्रयुक्त होकर तभी अर्थबोध एवं भाव वहन में समर्थ होता है जब वहाँ विभक्ति प्रत्यय या परसर्ग का संयोग प्राप्त करके पद बन जाता है। इस दृष्टि से 'पद' शब्द से अधिक महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि जब तक कोई शब्द पद नहीं बनता तब तक वह भावबोधन एवं वहन में सर्वथा असमर्थ ही रहता है। अतः शब्द के उस रूप को 'पद' कहते हैं जो विभक्ति प्रत्यय या परसर्ग का संयोग ग्रहण कर तथा किसी वाक्य में प्रयुक्त होकर अर्थ ओध एवं भाव बोध में सर्वथा समर्थ होता है। इस दृष्टि से हाथी, सरोवर, कमल, तोड़ना केवल शब्द हैं जबकि हाथी ने सरोवर में, कमलों को, तोड़ा से चारों पद हैं क्योंकि ने, में को विभक्तियाँ तथा आ प्रत्यय का संयोग हुआ है और इन विभक्तियों एवं प्रत्यय ने उक्त शब्दों को पद की योग्यता प्रदान की है।

- (1) **पद निर्माण प्रक्रिया**:- पद निर्माण की अनेक पद्धतियाँ हैं प्रमुख रूप से पद निर्माण के लिये प्रकृति और प्रत्यय की आवश्यकता होती है। प्रकृति में प्रत्यय के योग से जो शब्द बनता है, उसके आरम्भ में उपसर्ग और अन्त में विभक्ति लगा कर अर्थ भेद किया जाता है। प्रकृति से दो प्रकार के प्रत्यय लग कर पद की रचना होती है वे दो प्रत्यय हैं:-
- (1) सुबन्त:- प्रकृति या प्रातिपदिक+सुप् प्रत्यय।

जैसे-राम:-राम+सु(प्)।

सभी संज्ञा और विशेषण शब्दों में सुप् प्रत्यय लगते हैं। उपसर्ग और अवयवों के बाद भी सुप् लगते हैं, परन्तु उनका लोप हो जाता है।

- (2) तिङन्त:- धातुओं से तिङ् प्रत्यय (ति, तः, अन्ति आदि) लगते हैं। धातु+तिङः प्रत्यय-तिङ्त्। जैसे पठति-पठ्+अ+ति(वह पढ़ता है), धातुओं से तिङ् प्रत्यय लगते हैं। तिङ् प्रत्यय लगने पर ही उनको प्रयोग हो सकता है, क्योंकि इनमें पद बनाने वाले प्रत्यय सुप् और तिङ् नहीं लगे हैं।

निष्कर्ष:- उक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि शब्द और पद में पर्याप्त अन्तर है। शब्द विभक्ति रहित होते हैं जबकि पद विभक्ति सहित होते हैं। पद निर्माण की पद्धति महत्वपूर्ण है। संस्कृत एवं हिन्दी की पद निर्माण पद्धति अत्यन्त वैज्ञानिक और सिद्धान्तों पर आधारित है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है।

प्रश्न.2 सम्बन्ध तत्व और अर्थ तत्व के सम्बन्ध को व्यक्त करते हुए संबंध तत्व के प्रकारों व कार्यों का उल्लेख करो?  
 उत्तर. वाक्य में अर्थ तत्व तथा सम्बन्ध तत्व की स्थिति अनिवार्य रूप से होती है। अर्थ तत्व मूल रूप होने के कारण आधारभूत मान जाता है। जब उससे सम्बन्ध तत्व की सहायता से परिवर्तन उत्पन्न किया जाता है तब विशिष्ट अर्थ बोध के ही कारण वह पद कहलाता है। अतः पद रचना में संबंध तत्व का विशेष महत्व है। ये संबंध तत्व विभिन्न भाषाओं में अपनी परम्परा के अनुसार मिलते हैं। संबंध तत्व का प्रमुख कार्य होता है वाक्य में अर्थ तत्वों का पारस्परिक संबंध निर्देश। उदाहरण के लिए यह वाक्य ले सकते हैं—'कृष्ण ने दुशासन को चक्र से मारा'। इस वाक्य में कृष्ण, दुशासन, चक्र से मारना शब्द अर्थ तत्व हैं और ने, को, से प्रत्यक्ष संबंध तत्व हैं। मारा, से संबंध बतलाना है, को, और, से क्रमशः दुशासन तथा चक्र का संबंध स्थापित करते हैं।

**अर्थ तत्व और संबंध तत्व** :- प्रत्येक वाक्य का निर्माण पदों से होता है। कभी-कभी किसी वाक्य में एक ही पद होता है किन्तु अधिकांश वाक्यों का निर्माण कई पदों से होता है। वाक्य विधायक उन पदों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि उनमें कुछ ध्वनियाँ ऐसी होती हैं, जो केवल शब्दार्थ का बोध कराती हैं और कुछ ध्वनियाँ उन शब्दार्थों के पारस्परिक संबंध की द्योतक होती हैं। जैसे 'राम ने रावण को बाण से मारा'। वाक्य में चार पद आए हैं—राम ने, रावण को, बाण से, मारा। इन पदों में से राम, रावण, बाण और मारना ध्वनियाँ तो इस वाक्य के शब्दार्थ का बोध कराने वाली हैं, जबकि ने, को, आ, ध्वनियाँ किसी विशिष्ट अर्थ की द्योतक नहीं हैं, अपितु वाक्य में प्रयुक्त राम, रामण, बाण और मारना शब्दों के पारस्परिक संबंध की द्योतक हैं क्योंकि ध्वनियाँ ही यह बतलाती हैं कि इस वाक्य में राम कर्ता है, रावण कर्म है, बाण करण है और मारा भूत काल की क्रिया है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि प्रत्येक वाक्य में दो प्रकार की ध्वनियाँ का प्रयोग होता है कुछ ध्वनियाँ वाक्य के विचार या अर्थ का बोध कराती हैं और कुछ ध्वनियाँ ज्ञान कराती हैं। इनमें से जो ध्वनियाँ केवल अर्थ या विचार का बोध कराती हैं उन्हें अर्थ तत्व या अर्थ मात्र कहते हैं और जो ध्वनियाँ उन अर्थ तत्वों के पारस्परिक संबंध की द्योतक होती हैं उन्हें संबंध तत्व कहते हैं।

**अर्थतत्व व संबंध तत्व का संबंध :-**

संसार की समस्त भाषाओं में संबंध तत्व एक ही प्रकार के नहीं होते। अतः विभिन्न भाषाओं के अर्थ तत्व और संबंध तत्व के संबंध भी भिन्न पाए जाते हैं। निम्नांकित संबंध तत्वों का विवेचन सामान्य रूप से किया जा रहा है—

- (1) **पूर्ण योगः**—अर्थ तत्व व संबंध तत्व जब परस्पर इतने संयुक्त रहते हैं कि एक ही शब्द से दोनों तत्व प्रकट हो जाते हैं। तो पूर्ण संयोग कहा जाएगा। भारोपीय तथा समेटिक परिवार की भाषाएँ पूर्ण संयोग संबंध तत्व के सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

अरबी भाषा के कुतुब को ही लीजिए। इसमें तीन व्यंजन हैं—क—त—ब! इन तीनों व्यंजनों के बीच में विभिन्न अर्थ वाले शब्द बनते हैं तथा—

क+अ+त्+इ+ब्—कातिब।

क+इ+त्+अ+ब्—किताब।

क+उ+त्+उ+ब्—कुतुब।

यदि इसमें प्रत्यय लगावें तो और भी शब्द बन सकते हैं, जैसे—

म+कतब—मकतब

त+कतब—तकतब

कतब+त्—कतबत

- (2) **अपूर्ण संयोगः**—भाषाओं में जब अर्थतत्व से संबंध तत्व इस प्रकार जुड़ा रहता है कि मिले रहते हुए भी संयोग अपूर्ण रहता है और दोनों तत्व पृथक् सत्र रखते हैं जब उसे अपूर्ण संयोग कहते हैं। अंग्रेजी की निर्बल क्रियाएँ इसका अच्छा उदाहरण हैं, जैसे—

Hope+ed = Hoped

Like+ed = Liked

Ask+ed = Asked

Talk+ed = Talked

Kill+ed = Killed

Thank+ed = Thanked

आदि ऐसे कई उदाहरण हैं।

तुर्की:—अट्+लट्—अट्लर

यज्+मक्—यज्मक्

कन्नड़:—सेवक+रू—सेवकरू

सेवक+रन्नु—सेवकरन्नु

- (3) वियुक्त रूप (स्वतंत्र रूप):-कुछ भाषाएँ ऐसी भी हैं जिनमें अर्थ तत्व और संबंध तत्व बिल्कुल अलग रहते हैं। दोनों का अस्तित्व संबंध होते हुए भी पृथक् रहती हैं। चीनी तथा बँटू परिवार की भाषाएँ में पूर्ण शब्द तथा रिक्त शब्द मिलते हैं। रिक्त शब्दों का प्रयोग अधिक न होते हुए भी काफी होता है। इसका उदाहरण है—'वो ती उलत्सु' यहाँ वो और उलत्सु अर्थ तत्वों के मध्य तभी संबंध तत्व है,जिसकी सत्ता स्वतंत्र है। हिन्दी में ने,को, से आदि अंग्रेजी में ts,in,on आदि ऐसे ही उदाहरण हैं।

रिव—बी रेन—ए बी वी—ये सफेद औरतें।

यहाँ 'बी' बहुवचन सूचक संबंध तत्व है। बँटू परिवार की सोबिया भाषा का भी उदाहरण लिया जा सकता है।

मु—वन्तु मु—लोट—सुन्दर आदमी

यहाँ 'मु' एकवचन का संबंध तत्व है।

**हिन्दी में संबंध तत्व :-** हिन्दी में संबंध तत्व अनेक प्रकार के मिलते हैं। से,में,का,की,ने आदि रिक्त शब्द मिलते हैं। कर्ता,क्रिया,कर्म, का स्थान वाक्य में निश्चित सा ही रहता है। ये स्थान द्वारा प्रकट होने वाले संबंध तत्व के उदाहरण हैं। कभी स्वराघात व बलाघात के कारण भी वाक्य का अर्थ बदल जाता है,जैसे—घोड़ा राम ने खरीदा में घोड़ा पर बल दिया जाए तो एक अर्थ होगा और राम पर बल दिया जाय तो अर्थ बदल जाएगा। अपूर्ण संयोग के भी उदाहरण बहुत मिलते हैं। जैसे—बादल+ओ—बादलों में स्वर व्यंजन के परिवर्तन द्वारा अर्थ तत्व तथा संबंध तत्व का पूर्ण संयोग भी मिलता है। यहाँ दोनों को अलग नहीं किया जा सकता उदाहरणार्थ—'जा' से 'गया' को ले सकते हैं। वियुक्त रूप भी बहुत मिलता है, जैसे—हम+ने—हमने, तुम+ने—तुमने, तुम+को—तुमको आदि। अपश्रुति के उदाहरण भी मिलते हैं,जैसे काला से काली, गरम से गरमी आदि।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि हिन्दी में वियुक्त रूप तथा स्थान बोध वाले संबंध तत्वों का प्राधान्य होते हुए भी लगभग सभी प्रकार के संबंध तत्व मिल जाते हैं।

**संबंध तत्व के प्रकार :-** पद रचना के अन्तर्गत उदाहरणार्थ वाक्य में संबंध तत्वों को देखने से ज्ञात होता है कि किस संबंध तत्व अनेक प्रकार के होते हैं डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार ये इस प्रकार के हैं:-

इनके अति रिक्त भी अनेक प्रकार पाए जाते हैं,किन्तु अधिक प्रचलित केवल ये ही हैं,इनका विवेचन इस प्रकार है-

- (1) **शब्द का स्थान:-**चीनी आदि अयोगात्मक भाषाओं में वाक्य में शब्द का स्थान से ही संबंध तत्व का प्रकाशन हो जाता है।-

नगो तानी—मैं तुझे मारता हूँ।(कर्ता)

नी तान्गा—तू मुझे मारता है।(कर्म)

यहाँ 'नगो' शब्द वाक्य में अपने स्थान से ही क्रमशः 'कर्ता' तथा 'कर्म' बन रहा है।

अंग्रेजी आदि योगात्मक कर्म की भाषाओं में भी ऐसे ही उदाहरण मिल जाते हैं।

हिन्दी—लड़कू बन रहा है। (कर्ता)

मै लड़कू खाता हूँ।(कर्म)

अंग्रेजी—Ram Killed Ray.(कर्ता)

Ray Killed Ram. (कर्म)

संस्कृत,हिन्दी तथा अंग्रेजी के कुछ समासयुक्त पदों में भी स्थान के कारण संबंध तत्व के प्रकट होने से शब्दों का विशिष्ट अर्थ होता है, जो उनके स्थान को बदल देने पर नहीं रहता है—

संस्कृत—ग्राममल्लः—ग्राम का मल्ल (पहलवान)

मल्लग्रामः—मल्लो(पहलवानों)का ग्राम

हिन्दी— कार्यगृह—कार्य का घर (स्थान)

गृह कार्य—घर का कार्य

अंग्रेजी— Gold Medal—सोने का तमगा।

Medal Gold—तमगे का सोना।

उपर्युक्त सभी पदों में शब्दों का स्थान बदल देने से उनका अर्थ भी बदल जाता है।

- (2) **शून्य संबंध तत्वः**—कभी—कभी कोई शब्द अपने मूलरूप में ही वाक्य में प्रयुक्त दिखाई पड़ता है। संस्कृत में प्रथमः विभक्ति एकवचन में प्रयुक्त सरित,मरुत,भदी,स्त्री वारि आदि संज्ञा शब्द अपने मूल में (प्रतिपादिका) ही दिखलाई पड़ते हैं। संस्कृत में इन्हें बल प्रदान करने के लिए प्रत्यय तो होता है क्योंकि बिना विभक्ति के शब्द का संस्कृत में प्रयोग नहीं हो सकता,किन्तु उपर्युक्त प्रयोगों में 'सु' प्रत्यय का लोप कर दिया जाता है। अतः ऐसे स्थलों में भाषा वैज्ञानिक शून्य विभक्ति या शून्य संबंध तत्व माने जाते हैं।

हिन्दी में पढ़,लिख,हंस,रो,गा आदि क्रियाओं के आज्ञासूचक रूप भी ऐसे ही हैं।

अंग्रेजी में Go,Do आदि का प्रयोग I,You We आदि के साथ बिना किसी संबंध तत्व के ही होता है।

- (3) **स्वतंत्र शब्दः**—अनेक भाषाओं में संबंध तत्व का काम स्वतंत्र शब्दों से लिया जाता है।

(1) संस्कृत के—इति, एवं, अर्थ आदि अत्यव शब्द ।

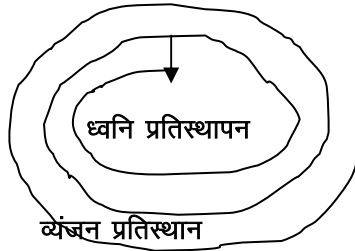
(2) हिन्दी के परसर्ग—ने, की, से, के लिए, से (अपादान), का, में आदि।

(3) चीनी के रिक्त शब्द—त्सि(—का), यु(—को), त्सुंग (—से) और लि (—पर) आदि।

(4) अंग्रेजी के—to,from,on,in आदि शब्द इसी प्रकार के हैं।

- (4) **ध्वनि प्रतिस्थापन** :- यह भी तीन रूपों में मिलता है—

स्वर प्रतिस्थापन



स्वर तथा व्यंजन

प्रतिस्थान

- (1) **स्वर प्रतिस्थापन या अपश्रुतिः**—कभी—कभी शब्द में केवल स्वर परिवर्तन के द्वारा ही संबंध तत्व को प्रकट किया जाता है—

संस्कृत में 'देव से दैव' 'पुत्र से पौत्र' 'दशरथ से दशरथि' हिन्दी में लिख से लिखा, पढ़ से पढ़ा मर से मरा आदि। अंग्रेजी में Sing से Sang और Sung,Song,Come से Came, Tooth से जममजी आदि।

अरबी आदि अन्तर्मुखी विभक्ति प्रधान भाषाएँ इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

- (2) **व्यंजन प्रतिस्थापन:**—अंग्रेजी में Advice से |कअपेम तथा Send से Sent आदि इसी प्रकार के उदाहरण हैं।
- (3) **स्वर तथा व्यंजन प्रतिस्थापन:**—संस्कृत में पच् से अपाक्त (लुड.) हिन्दी में 'जा' से 'गया' अंग्रेजी में Go से Went आदि उदाहरण इसी कोटि के हैं।
- (5) **ध्वनि द्विरावृत्ति:**—मूल शब्द के मध्य या अन्त में कुछ ध्वनियों की द्विरावृत्ति से भी यदा—कदा संबंध तत्व का काम लिया जाता है। एक अफीकी भाषा का यह उदाहरण है—  
 (इरिक)—चलना। किन्तु—  
 (इरिकरिक)—वह चलता है।  
 संस्कृत तथा ग्रीक में भी कुछ उदाहरण मिलते हैं। वैदिक भाषा में—  
 द्याविद्यवि—प्रतिदिन, यँहाँ द्यवि की द्विरावृत्ति से प्रति का भाव प्रकट किया गया है।
- (6) **ध्वनि वियोजन:**—इसी को ध्वनि न्यूनन भी कहा जा सकता है। कुछ भाषाओं में संबंध तत्व को प्रकट करने के लिए मूलशब्द की कुछ ध्वनियों को निकाल दिया जाता है। फ्राँसीसी भाषा में ऐसे उदाहरण हैं—  
 स्त्रीलिंग लिखित रूप – Petite  
 उच्चारित रूप – Pti –छोटा हैं।  
 पुल्लिंग लिखित रूप – Petit  
 उच्चारित रूप – Pti
- (7) **उप सर्ग,पूर्वसर्ग आदि सर्ग या पूर्व प्रत्यय:**—कुछ भाषाओं में मूलशब्द के आदि (पूर्व) में कुछ जोड़कर संबंध तत्व का काम लिया जाता है। जैसे संस्कृत में भूतकाल में क्रिया के पूर्व 'अ' जोड़ा जाता है—अगच्छत—अपठत—पढ़ा।  
 अफ्रिकी बन्तु परिवार की काफिरी भाषा में यह विशेषता प्रमुख रूप से मिलती है— कु—सम्प्रदान कारक का चिह्न।  
 कुति—हमको—ति—हम  
 कुनि—उनको—नि—उन
- (8) **मध्य सर्ग, मध्य प्रत्यय:**—मूल शब्द के मध्य में संबंध तत्व सूचक प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। भुण्डा परिवार की भाषा संथाली में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं।  
 दल—मारना  
 दपल—परस्पर मारना 'प' से बहुवचन को  
 मक्षि—मुखिया सूचित किया जाता है।  
 मपझि—अनेक मुखिया
- (9) **अन्तसर्ग,अंत्यप्रत्यय,विभक्ति या प्रत्यय:—ये** संबंध तत्वों में सर्वाधिक प्रचलित हैं। संस्कृत में 'सुपु' और 'तिड.' प्रत्यय अन्त में ही आते हैं, तथा उनसे ही अधिकांश पद बनते हैं।  
 संस्कृत में—  
 बालकः(सु)—बालकः(कर्ता एक वचन)  
 बालक अम्—बालकम्(कर्म,एक वचन)

पठ+ति(प्) पठति, इत्यादि

हिन्दी में—

हो+ता या गा—होता या होगा आदि ।

अंग्रेजी में—

Loving या ly= Loving या Lovely आदि ।

(10) **ध्वनिगुणः—**

(1) मात्रा—जैसे हिन्दी में—

मिटना से मिटाना—यहाँ ह्रस्व अ के स्थान परदीर्घ

मरना से मारना—आ होने से अर्थ बदल गया है ।

(2) सुर—द्वारा संबंध तत्व कोसु प्रकट करने के लिए 'चीनी' आदि अयोगात्मक भाषाएं विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। वैदिक तथा ग्रीक भाषाओं में भी यह विशेषता विद्यमान थी। इन्द्रशत्रु उदाहरण में वैदिक भाषा की यहीं विशेषता ज्ञात होती हैं। शब्द में सुर का स्थान बदल जाने से यहाँ उसके संबंध तत्व में भी परिवर्तन हो जाता है। परिणामस्वरूप अर्थ भी भिन्न हो जाता है।

(3) **बलाघातः**—संस्कृत आदि भाषाओं में भी पहले इसका महत्व रहा आजकल अंग्रेजी में—

Conduct O पर बलाघात से संसपद तथा

Conduct U पर क्रियापद माना जाता है।

इस प्रकार इन दस प्रकारों के अलावा अन्य प्रकार भी मिल सकते हैं खोजने पर इस में सन्देह नहीं है। इस प्रकार संबंध तत्वों के अनेक प्रकार विश्व की भाषाओं में प्रचलित हैं।

**संबंध तत्व के कार्य :-**

संबंध तत्व का कार्य भाषा में प्रधान रूप से पुरुष,वचन,काल तथा लिंग को अभिव्यक्त करना है। इनका परिचय इस प्रकार है—

(1) पुरुष संख्या में तीन होते हैं—उत्तम,मध्यम तथा अन्य। क्रिया रूपों का परिवर्तन पुरुष के अनुसार हो जाता है। पुरुष के प्रभाव से क्रिया में जो परिवर्तन होता है वह कभी तो स्वरों—व्यंजनो आदि के बदलने से हो जाता है और कभी विभक्ति का परिवर्तन करना पड़ता है। प्रथम के उदाहरण हिन्दी के 'वह जाएगा' तुम जाओगे, मैं जाऊँगा आदि में मिलते हैं और दूसरे के उदाहरण संस्कृत के भूति,भूसि,भूमि के रूप में मिल सकते हैं। अंग्रेजी में पुरुष के अनुसार क्रिया नहीं बदलती वचन से बदलती है। जैसे—I eat,you eat,They eat, में eat क्रिया अपरिवर्तित रूप में रहती है।

(2) वचन—वचन दो होते हैं—एकवचन,बहुवचन परन्तु संस्कृत तथा लिथुआ नियन जैसी कुछ भाषाओं में द्विवचन और अफ्रीकी की कुछ भाषाओं में त्रिवचन भी मिलता है। वचन का संबंध संज्ञा,सर्वनाम तथा क्रिया से रहता है। संस्कृत जैसी प्राचीन भाषाओं में और हिन्दी जैसी आधुनिक भाषाओं में विशेषण का भी संबंध वचन से होता है।

बहुवचन के भाव को अभिव्यक्ति देने के लिए अधिकतर एक वचन के रूप में प्रत्यय जोड़ देते हैं। प्रत्येक संज्ञा,क्रिया तथा विशेषण में लगते हैं। हिन्दी में 'ओ' 'ए' यों, तथा या प्रत्यय लगते हैं। यथा—

**संज्ञाः—**

एकवचन	बहुवचन
बच्चा	बच्चों, बच्चे
लड़की	लड़कियाँ, लड़कियों
रास्ता	रास्तों, रास्ते
घर	घरों

**क्रिया:-**

एकवचन	बहुवचन
किया	किए
गया	गए
पाया	पाए
सुना	सुने

**विशेषण:-**

एकवचन	बहुवचन
अच्छा	अच्छे
बुरा	बुरे
भला	भले
ठण्डा	ठण्डे

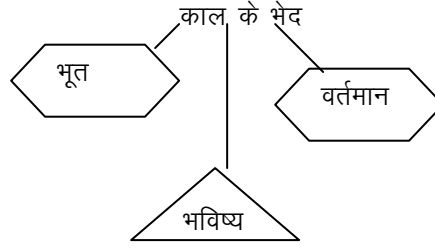
**सर्वनाम:-**

(बहुवचन बनने में रूप बदल जाते हैं)

एकवचन	बहुवचन
मैं	हम
मुझे	हमें
मेरे	हमारे
तू	तुम
तुझे	तुम्हें
वह	वे
उसने	उन्होंने
मुझको	हमको

कभी-कभी प्रयोगानुसार बहुवचन बन जाने के बाद भी संज्ञा में कोई प्रत्यय नहीं लगता, जैसे-मैंने दस आदमी देखे।

(3) काल:-काल के तीन भेद होते हैं-भूत, वर्तमान, भविष्य।



इन तीनों कालों की पूर्णता-अपूर्णता के आधार पर सामान्य अपूर्ण आदि अनेक उपभेद किए जाते हैं। क्रिया में अनेक प्रकार के संबंध तत्वों के योग के काल के विविध भेदों को प्रकट करते हैं। कहीं केवल ed को जोड़कर जैसे Talk+ed=Talked व kSj dgha Lora= शब्द जोड़कर जैसे- He Will go में Will का प्रयोग। कहीं-कहीं इतना परिवर्तन हो जाता है कि अर्थ तत्व तथा संबंध तत्व का भेद ज्ञान समाप्त हो जाता है, जैसे 'जा' से 'गया' अथवा Go से Went इसी प्रकार अनेक संबंध तत्वों के प्रयोग द्वारा काल बोध हो जाता है।

(4) लिंग-प्रकृतिक रूप से दो हैं, साहित्य में तीन माने गए हैं-पुल्लिंग,स्त्रीलिंग,नपुंसकलिंग। पुल्लिंग पुरुषवाचक स्त्रीलिंग स्त्रीवाचक और नपुंसकलिंग अभयवाचक अथवा अचतेन पदार्थ वाचक माना गया है। सभ भाषाओं में लिंग भेद का व्यावहारिक सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ संस्कृत में दारा (स्त्री का पर्याय) पुल्लिंग है और (कलत्र) नपुंसकलिंग में प्रयुक्त होता है।

हिन्दी में 'किताब' को नपुंसकलिंग होते हुए भी स्त्रीलिंग में रखा गया है। इसी प्रकार छिपकली,मक्खी,मकड़ी आदि का प्रयोग सर्वदा स्त्रीलिंग में ही होता है। अंग्रेजी में सूर्य को पुल्लिंग व चन्द्रमा को स्त्रीलिंग मानते हैं जबकि वास्तव में दोनों ही समान हैं।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि लिंग भेद का कोई व्यावहारिक सिद्धान्त नहीं है। पंजाबी राजस्थानी तथा सिंधी में दो लिंग मिलते हैं। बंगाली,उड़िया,आसामी तथा बिहारी में व्याकरण संबंधी लिंग भेद नहीं मिलता है। भाषा में लिंग भाव व्यक्त करने के मुख्य दो ढंग हैं।

(1) प्रत्यय जोड़कर।

(2) स्वतंत्र शब्द जोड़कर।

प्रथम का उदाहरण हिन्दी में पुत्र से पुत्री,महेंतर से मेहतरानी आदि, अंग्रेजी में Prince से Princess,Poet से Poetess,Man से Woman आदि के रूप मिलते हैं।

स्वतंत्र शब्द जोड़कर लिंग भेद के उदाहरण अधिक नहीं मिलते। अंग्रेजी का He Goat और She Goat इसका अच्छा उदाहरण है।

**निष्कर्ष:**-संबंध तत्व और अर्थ तत्व से संबंधित जो विवेचन ऊपर किया गया है उससे इन दोनों का संबंध और अन्तर तो स्पष्ट हो ही जाता है, साथ ही साथ संबंध तत्व के प्रकार और कार्य का भी विवेचन हो जाता है। इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि संबंध तत्व का रूप विज्ञान में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है। यह एक ऐसा कार्यक्रम है जिसके सहारे भाषा विज्ञान में और खासकर पद विज्ञान या रूप विज्ञान को समझने में सहायता मिलती है।

प्रश्न.3 रूप परिवर्तन की प्रमुख दिशाओं का सोदाहरण परिचय दीजिए तथा रूप परिवर्तन व ध्वनि परिवर्तन में अन्तर को समझाइये।

उत्तर. उच्चारण की दृष्टि से भाषा की इकाई 'ध्वनि' हैं और सार्थकता की दृष्टि से 'शब्द'। शब्द के दो रूप होते हैं—प्रथम के अन्तर्गत शब्द का शुद्ध मूल रूप आता है जो शब्दलोप में होता है। द्वितीय रूप वह रूप या पद कहते हैं। संस्कृत में भी वैयाकरणों ने दो रूपों की ही कल्पना की है। वहाँ मूल रूप को प्रतिपादित या प्रकृति कहा जाता है और संबंध स्थापन के लिए जोड़े जाने वाले तत्व को प्रत्यय कहा गया है। सीधे शब्दों में वह शब्द विभक्ति विहीन और पद विभक्ति सहित होता है। और यही पद रूप भी है। इस विवेचन के आधार पर रूप अथवा पद की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी जा सकती है— वाक्य के प्रयुक्त शब्द संबंध स्थापन को रूप या पद की संज्ञा दी जाती है।

**रूप परिवर्तन व ध्वनि परिवर्तन का अन्तर:—** रूप विकार का संबंध शब्दों एवं पदों के परिवर्तन से होता है जबकि ध्वनि विकार का संबंध किसी शब्द की ध्वनियों से होता है। रूप विकार प्रायः सम्पूर्ण शब्द एवं पद को प्रभावित करता है और उसके फलस्वरूप या तो प्राचीन शब्द लुप्त हो जाता है या किसी नये रूप का विकास हो जाता है जबकि ध्वनि विकार के परिणामस्वरूप न तो कोई शब्द लुप्त होता है और न किसी नए पद का विकास होता है अपितु प्राचीन शब्द का स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। जैसे— अग्नि का आग बन जाना। ध्वनि ध्वनियों के लुप्त होने से आग शब्द बना है और इसमें अग्नि शब्द की ध्वनि भी किसी मात्रा में विद्यमान है। परन्तु रूप कि स्थान पर एक नया रूप ही प्रचलित हो जाता है। जैसे— संस्कृत के अग्नये और अग्ने: इन दोनों रूपों के स्थान पर पालि में एक अगिरस रूप का प्रचार होना अथवा संस्कृत के वायवे और वायो: रूपों के स्थान पर पालि में एक वाउस्स रूप का प्रयोग होना।

ध्वनिपरिवर्तन पद की केवल किसी विशिष्ट ध्वनि में होता है, किन्तु रूप परिवर्तन से पूरा पद ही प्रभावित होता है। जैसे—संस्कृत—हिन्दी

ध्वनि परिवर्तन—अतसी—तीसी—केवल आदि स्वर अ का लोप

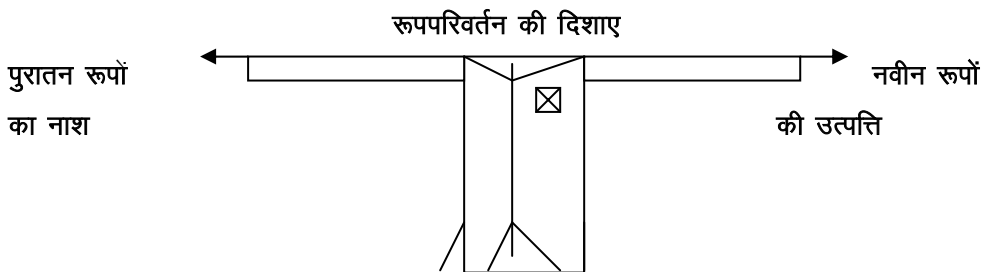
रूप परिवर्तन—गो—गाय—पूरा पद ही बदल गया है।

ध्वनि परिवर्तन का क्षेत्र विस्तृत तथा रूप परिवर्तन का क्षेत्र संकुचित होता है। ध्वनि परिवर्तन के बाद पुराने रूपों का प्रचलन समाप्त हो जाता है, क्योंकि पुरानी ध्वनि को समाप्त करके ही नई ध्वनि आती है, जबकि रूप परिवर्तन होने के बाद नये रूपों के साथ पुराने रूप भी चलते हैं।

### **रूप परिवर्तन की दिशाएँ**

रूप परिवर्तन की मुख्य रूप से दो ही दिशाएँ हैं।

अधिकतर विद्वानों ने इसके दो ही दिशाएँ मानी हैं—



- (1) **पुरातन रूपों का नाश** :- रूप परिवर्तन या रूप विकास की प्रथम दिशा हैं—पुराने रूपों का नाश लोप या परिवर्तन। मानव का यह स्वभाव है कि जब किसी भाषा में पुराने तथा नए अनेक रूप एक साथ चलते रहते हैं तो पुराने तथा अपवाद रूप में प्राप्त रूपों का धीरे-धीरे विनाश हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि वैदिक भाषा पर दृष्टि डालें तो हमें ज्ञात होता है कि उसमें शब्द रूपों तथा धातुओं में बहुत विविधता थी अर्थात् एक ही अर्थ में अनेक रूप प्रचलित थे। आगे चलकर संस्कृत में उपर्युक्त रूपों में नियम द्वारा एकरूपता आई या लाई गई जिससे अनेक वैदिक अपवाद रूपों का लोप हो गया है।

इसके पश्चात् संस्कृत में अकारान्त शब्दों की संख्या अधिक थी, किन्तु इकारान्त तथा उकारान्त शब्द भी थे और इन अकारान्त,इकारान्त तथा उकारान्त शब्दों के रूप भिन्न थे, किन्तु प्राकृत काल में इस भिन्नता को भी समाप्त कर दिया गया तथा इकारान्त,उकारान्त शब्दों के रूप भी अकारान्त जैसे ही होने लगे। इसके अतिरिक्त संस्कृत में चतुर्थी विभक्ति एकवचन तथा षष्ठी विभक्ति एकवचन के रूपों में पर्याप्त विभिन्नता थी, किन्तु प्राकृत काल में इन दोनों ही विभक्तियों में शब्द के रूप बिल्कुल ही समान होगा।

उदाहरणार्थ—

संस्कृत	संस्कृत	प्राकृत
चतुर्थी एकवचन	षष्ठी एकवचन	चतुर्थी—षष्ठी एकवचन
अकारान्त पुत्र—पुत्राय	पुत्रस्य	पुत्र—पुत्रस्य
इकारान्त अग्नि—अग्नये	अग्नेः	अग्नि—अग्गिरस
उकारान्त वायु—वायवे	वायोः	वाउ—वाउस्स

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत में रूप भैविध्य और भी कम हो गया है।

इसके आगे अपभ्रंशकाल तथा आधुनिककाल में भी यह प्रवृत्ति चलती रही। अपभ्रंश में पुराने (संस्कृत—प्राकृत) के आठ कारक रूपों के स्थान पर केवल तीन ही प्रकार के कारक रूप मिलते हैं अर्थात्—

पुरातन रूप—(1) कर्ता (2) कर्म तथा (3) सम्बोधन (4) करण तथा (5) अधिकरण (6) सम्प्रदान (7) अपादान तथा (8) संबंध

आगे चलकर हिन्दी में केवल दो ही विभक्तियाँ रह गई हैं—

(1) अविकारी	(2) विकारी
मैं	मुझ,मुझे,मेरा,मेरे
हम	हमें,हमारा,हमारे
तू	तुझ,तुझे,तेरा,तेरे
वह	उस,उसे,उसका,उसके
वे	उन,उन्हें,उनका,उनके
लड़का	लड़के,लड़को
लड़की	लड़कियाँ,लड़कियों आदि

उपर्युक्त भारतीय भाषाओं की भाँति ही अंग्रेजी में भी पहले की अपेक्षा रूपों में कमी हुई है। अंग्रेजी की बली क्रियाओं के रूप बिना किसी नियम के चलने के कारण स्मरण रखने में कठिन होते हैं जैसे—

## Go-Went-Gone

## Sing-Sang-Sung

बली क्रियाओं की तुलना में निर्बल ( Weak) क्रियाओं के रूप एक नियम से लगाकर चलते हैं। अतः उन्हें स्मरण रखना सरल होता है जैसे— Call-Called-Called परिणामस्वरूप अंग्रेजी में बली क्रियाओं के रूपों का स्थान निर्बल क्रिया के रूप लेते जा रहे हैं।

पुरातन तीन लिंगों के स्थान पर दो लिंग—पुल्लिंग स्त्रीलिंग तथा तीन वचनों के स्थान पर दो वचन—एक वचन तथा बहुवचन के प्रयोग के कारण भी अनेक रूपों का लोप हो गया है।

(2) **नए रूपों की उत्पत्ति** :- रूप परिवर्तन की दूसरी दशा है—नए रूपों की उत्पत्ति या आगम। अन्य क्षेत्रों की भांति भाषा में भी क्रिया प्रतिक्रिया चलती रहती है—रूप परिवर्तन के क्षेत्र में भी जब रूपों में बहुत अधिक एकरूपता आ जाती है तो रूपों के प्रयोग में भ्रम होने लगता है तथा अर्थ में भी अनिश्चितता तथा सन्देह उत्पन्न हो जाता है। तब प्रतिक्रियास्वरूप रूपों की एकरूपता को समाप्त करके उनमें अनेकरूपता लाने का प्रयत्न होने लगता है। नवीनता का आकर्षण भी इसमें सहायक होता है उदाहरण के लिए संस्कृत में आकारान्त स्त्री—लिंग “लता” शब्द के एक वचन के रूप पंचमी तथा षष्ठी विभक्ति के अतिरिक्त शेष विभक्तियों में भिन्न—भिन्न थे, किन्तु पालि (प्राकृतकाल) में तृतीया विभक्ति से लेकर सप्तमी विभक्ति तक सब रूप एक जैसे ही हो गए:—

‘लता’ एकवचन

तृतीय—लताय	लताय
चतुर्थी—लतायै	लताय
पंचमी—लतायः	लताय
षष्ठी—लतायाः	लताय
सप्तमी—लतायाम्	लताय

उपर्युक्त ‘पालि’ के रूपों में से किसी एक की भाषा में प्रयुक्त हुआ देखकर यह समझना कठिन है कि वह कौनसी विभक्ति का रूप है तथा कौन से कारक संबंध को प्रकट कर रहा है। अतः अर्थ की प्रतीति में कठिनाई का आना स्वाभाविक हो गया। पालि के बाद की प्राकृत में तथा अपभ्रंश में इस प्रवृत्ति का विकास और भी अधिक हुआ है।

ऐसी दशा में अस्पष्टता को दूर करने की दिशा में स्वाभाविक प्रतिक्रिया हुई तथा बाद के अपभ्रंश काल में विभिन्न कारकों के अर्थ प्रकट करने के लिए मूल शब्दों के साथ सहायक शब्दों (प्रत्ययों) का व्यवहार होने लगा। उदाहरण के लिए षष्ठी में ‘लताय’ के स्थान पर ‘लता’ करके तथा सप्तमी में यही सहायक शब्द आधुनिक हिन्दी में परसर्गों (ने,को,से, का) में विकसित हो गए हैं।

इसी प्रकार क्रिया रूपों में भी भ्रम उत्पन्न होने लगा था। ‘पालि’ में पंच धातु के लुड लकार (सामान्य भूत) के एकवचन में,तीनों पुरुषों में एक से ही रूपों को देखकर इनमें भेद करना कठिन है।

प्रथम पुरुष—अपचि
मध्यम पुरुष—अपचि
उत्तम पुरुष—अपचि

अतः इस भ्रम को दूर करने के लिए तिङन्त रूपों के स्थानों पर कृदन्त रूपों का व्यवहार होने लगा। आगे चलकर सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति की स्पष्टता के लिए कृदन्तों के साथ सहायक संयुक्त क्रियाएँ भी जोड़ी जाने लगी।

क्रिया रूपों का विकास:—संस्कृत,अंग्रेजी,बंगला आदि कई भाषाओं में क्रियाओं के अन्तर्गत संज्ञा के लिंगानुसार परिवर्तन नहीं होते, वहाँ पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग में एक ही तरह की क्रिया का प्रयोग होता है। जैसे—

संस्कृत—मोहनः गच्छति (पुल्लिंग)

सीता गच्छति (स्त्रीलिंग)

अंग्रेजी—Mohan goes (पुल्लिंग)

Sita goes (स्त्रीलिंग)

बंगला—मोहन जाच्चे (पुल्लिंग)

सीता जाच्चे (स्त्रीलिंग)

परन्तु हिन्दी में क्रिया संबंधी यह न्यूनतम विकास हुआ है कि यहाँ संज्ञा के लिंगानुसार क्रिया में भी लिंगों का प्रयोग होता है और लिंगानुसार क्रिया परिवर्तित होती रहती है। जैसे—

मोहन जाता है। (पुल्लिंग)

सीता जाती है। (स्त्रीलिंग)

पलक फड़कता है। (पुल्लिंग)

नाक बहती है। (स्त्रीलिंग)

हाथ चलता है। (पुल्लिंग)

अंगुलियाँ चलती हैं। (स्त्रीलिंग)

उपर्युक्त उदाहरणों में मोहन पलक और हाथ पुल्लिंग हैं। अतएव उनके साथ क्रमशः जाता है,फड़कता है,और चलता है क्रिया का प्रयोग भी पुल्लिंग में हुआ। सीता नाक और अंगुलिया स्त्रीलिंग हैं, अतएव इनके साथ क्रमशः जाती है, बहती है और चलती है क्रियाओं के प्रयोग भी स्त्रीलिंग में हुए।

इससे, संस्कृत में तो क्रियाओं के प्रायः संश्लिष्ट रूप ही अधिक प्रचलित थे। जैसे—गच्छति,पठति,अस्ति,ददाति,दधाति आदि। इस प्रकार संस्कृत की संश्लिष्ट क्रियाएँ हिन्दी में आकार विश्लिष्ट रूप में विकसित हो गईं जैसे—

संस्कृत	हिन्दी
अहं पठासि	मैं पढ़ता हूँ।

सं: पठति	वह पढ़ता है।
----------	--------------

ब्बं पठसि	तू पढ़ता है।
-----------	--------------

हिन्दी की क्रियाओं में यह वियोगावस्था वर्तमान काल तथा भूतकाल की क्रियाओं में अत्यधिक पाई जाती है। जैसे—

वर्तमान काल	भूतकाल
राम जाता है।	राम जाता था।

मोहन खाता हैं।                      मोहन खाता था।  
सीता गाती हैं।                      सीता गाती थी।

उपर्युक्त उदाहरणों में जाता,खाता और गाती तो कृदन्त रूप हैं वर्तमान एवं भूतकाल में समान रूप से प्रयुक्त हुए हैं किन्तु 'हैं' सहायक क्रिया वर्तमान काल की द्योतक हैं तथा 'था' 'थी' सहायक क्रियाएं भूतकाल की द्योतक हैं।

तीसरे, संस्कृत में विधि, आशी और क्रिया पति के लिए पृथक-पृथक क्रियाओं का प्रयोग होता था परन्तु हिन्दी में एक ही क्रिया उक्त तीनों भावों की व्यक्त करने के लिए विकसित हुई हैं। जिसके फलस्वरूप अब हिन्दी में क्रिया के अधिक रूपों की आवश्यकता नहीं पड़ती जैसे—

वह गुरुजनों का आदर करे                      (विधि)  
पुत्र सुखी रहें    (आशीः)  
वह घर जाए    (आज्ञा)  
यदि वह रात-दिन पढ़े                              (क्रियातिपत्ति)

अन्यरूपों का विकास:-भारतीय आर्थ भाषाओं में जहाँ संज्ञा,सर्वनाम,विशेषण और क्रिया के रूपों का नवीनतम विकास हुआ है, वहाँ इनके अतिरिक्त और भी कुछ नए-नए रूप विकसित हुए हैं। जैसे-बील का मत है कि—

“अवयव-कृदन्त कर्म वाक्य और विशेषण सम्पूर्ण भारोपीय परिवार की भाषाओं” में नवीन विकास के अन्तर्गत आते हैं”।

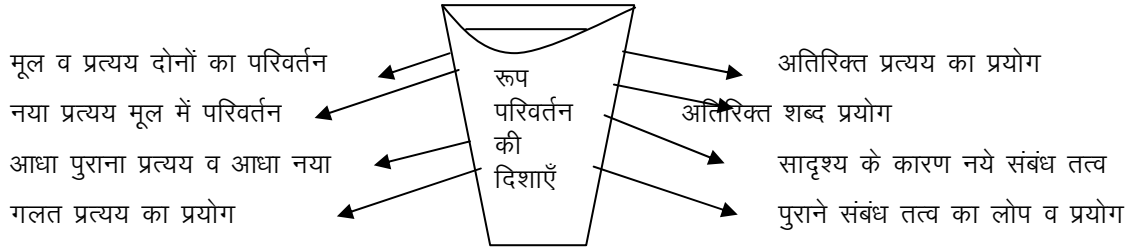
जैसे अंग्रेजी में—

1. To err is human?
2. birds love to sing.
3. To respect our parents is our duty.
4. He refused to obey the order.
5. Many men desire to make money quickly.

इसी तरह हिन्दी में भी कतिपय अत्यव कृदन्तों का प्रयोग मिल जाता है क्योंकि यहाँ भी कुछ क्रियाएँ संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होने लगी हैं। जैसे—

1. घूमना एक सुन्दर व्यायाम है।
2. अधिक बढ़ना हानिप्रद होता है।
3. सोना स्वास्थ्य के लिए हितकर होता है।
4. पढ़ना एक गुण है।
5. नाचना एक कला है।

इन रूप परिवर्तन की दिशाओं के अलावा डॉ० भोलानाथ तिवारी ने भी रूप परिवर्तन की 9 दिशाएँ बताई हैं—



- (1) **पुराने संबंध तत्व का लोप तथा नये का प्रयोग:**—ध्वनि परिवर्तन से प्रायः पुराने संबंध तत्व जब लुप्त हैं। जाते हैं तो अर्थ की स्पष्टता के लिए नये संबंध तत्व जोड़े जाने लगते हैं जैसे—संस्कृत राम;रामं,रामस्य,रामे आदि के स्थान पर आज रामने,राम का,राम में, आदि का प्रयोग इसी का उदाहरण हैं।
- (2) **सादृश्य के कारण नये संबंधतत्व के साथ नये रूप:**—संस्कृत अग्नेः का अग्ने होना चाहिए था, किन्तु प्राकृत में मिलता हैं अग्निस। चला,पढ़ा आदि के सादृश्य पर क्रिया के स्थान पर करा अथवा चलिए,पढ़िए आदि के सादृश्य पर कीजिए के स्थान पर करिए आदि।
- (3) **अतिरिक्त प्रत्यय का प्रयोग:**—अर्थात् एक प्रत्यय के रहते दूसरे का भी प्रयोग जवाहरात,जवाहरातों। यहाँ बहुवचन प्रत्यय, “आत्” के रहते “ओ” भी प्रयुक्त हुआ हैं। अनेकों में “ओ” प्रत्यय अतिरिक्त हैं जो वस्तुतः वही काम कर रहा हैं जो “आत्” पर असल “मैं” या दर भी अतिरिक्त हैं।
- (4) **अतिरिक्त शब्द प्रयोग:**—सर्वश्रेष्ठ,सर्वोत्तम ऐसे ही तम बोधक रूप हैं।
- (5) **गलत प्रत्यय का प्रयोग:**—‘इन्द्रियों’ के स्थान पर ‘इन्द्रिया’ रूप इसी प्रकार का हैं।
- (6) **नया प्रत्यय:**—प्रभावशाली के स्थान पर प्रभावी। पहले प्रभावशाली ही चलता था।
- (7) **आधा पुराना प्रत्यय तथा आधा नया:**—छठा के स्थान पर छठवाँ में ‘छ’ मूल शब्द हैं। ‘छ’ छठा का पुराना प्रत्यय हैं तथा वाँ,पाँचवा,सातवाँ आदि के सादृश्य पर आया नया प्रत्यय हैं।
- (8) **मूल में परिवर्तन:**—इससे भी रूप परिवर्तन होता हैं। मुझको के स्थान पर मेरे को अथवा तुझको के स्थान पर तेरे को में प्रत्यय वहीं हैं, केवल मूल बदल गया हैं।
- (9) **मूल और प्रत्यय दोनों का परिवर्तन:**—ऐसा कम होता हैं। अंग्रेजी में Go का भूतकाल Went इसी प्रकार का हैं।

**निष्कर्ष:**—संक्षेप रूपों में विद्यमान एकता के स्थान पर अनेकता तथा विविधता लाने के लिए भाषा में अनेक नवीन रूपों की उत्पत्ति हुई हैं।

प्रश्न.1 वाक्य किसे कहते हैं ? परिभाषा देते हुए वाक्य के अनिवार्य तत्वों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर. वाक्य विज्ञान भाषा विज्ञान की वह शाखा है जिससे पदों के पारस्परिक सम्बन्ध का विचार किया जाता है। वाक्य को प्रायः लोग सार्थक शब्दों का समूह मानते हैं जो भाव को प्रकट करने की दृष्टि से अपने आप में पूर्ण हों। कोषों तथा व्याकरणों में भी वाक्य की इसी प्रकार की परिभाषा मिलती है। यूरोप में इस दृष्टि से प्रथम प्रयास थ्रैक्स का है और भारत में पंतजलि का नाम लिया जा सकता है।

**परिभाषा** :- परिभाषा का कार्य पर्याप्त कठिन होता है किन्तु मानव मन फिर भी हर स्थिति में परिभाषा की तलाश करता ही है। 150 ई.पू. पंतजलि ने वाक्य की परिभाषा करते हुए कहा कि—

“पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराने वाला शब्द समूह ही वाक्य है”।

भर्तृहरि ने अपने ग्रंथ “वाक्यपदीय” में अपने पूर्ववर्ती न्यायवादी आचार्यों के मतों को संकलित करते हुए, उनके द्वारा मान्य वाक्य की निम्नलिखित आठ परिभाषाएँ दी हैं।

- (1) क्रियापद को वाक्य कहते हैं।
- (2) क्रियापद सहित कारकादि के समूह को वाक्य कहते हैं।
- (3) क्रिया तथा कारकादि समूह में रहने वाली ‘जाति’ को वाक्य कहते हैं।
- (4) क्रियादि समूह रूप एक अखण्ड शब्द (स्फोट) को वाक्य कहते हैं।
- (5) क्रियादि पदों के विशेष क्रम को वाक्य कहते हैं।
- (6) क्रियादि के बुद्धिगत अखण्ड समन्वय को वाक्य कहते हैं।
- (7) आकांक्षा युक्त प्रथम पद को ही वाक्य कहते हैं।
- (8) आकांक्षा युक्त पृथक्-पृथक् सभी पदों को वाक्य कहते हैं।

आख्यातशब्दः संघातो जातिः संघातवर्तिनी।

एकोऽनवयः शब्दः कमो बुद्ध्यनुसंहतिः।।

काव्यायन एवं पंतजलि ने भारत के प्राचीन आचार्यों के वाक्य संबंधी विभिन्न मतों का संकलन करते हुए वाक्य के चार लक्षण बताये हैं—

- (1) क्रिया, अव्यय, कारक और विशेषण पद जहाँ एकत्र हों उसे वाक्य कहते हैं।
- (2) जहाँ उक्त चारों पदों के साथ-साथ क्रिया विशेषण भी सम्मिलित हो तो वाक्य मानना चाहिए।
- (3) जहाँ विशेषण सहित क्रिया हो, वहीं वाक्य होता है।
- (4) जहाँ तक क्रिया हो, उसी को वाक्य कहते हैं, जैसे—‘बोलो’। यहाँ बोलो एक पूरा वाक्य है।

न्यायभाष्यकार वात्स्यायन के विचारनुसार—

“साकांक्ष पदों के समूह को वाक्य कहते हैं।”

आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है कि—

“योग्यता, आकांक्षा और आशक्ति से युक्त पदों के समूह को वाक्य कहते हैं।

अमरकोशकार अमर सिंह ने लिखा है कि—

“सुबन्त या तिङन्त पदों के समूह को अथवा कारक युक्त क्रिया को वाक्य कहते हैं।

“सुपतिङन्तचयो वाक्य क्रिया वा कारकानित्ता ।”

माधव प्रसाद पाठक ने वाक्य को इस प्रकार समझाया है—

“वाक्य उस पद समूह को कहते हैं जो श्रोता के प्रति वक्ता के वक्तव्यभाव के बोधन में समर्थ हों।”

डॉ० भोलानाथ तिवारी कृत परिभाषा—

“वाक्य पूरी बात की तुलना में अपूर्ण होते हुए भी अपने आप में पूर्ण, लघुत्तम स्वतंत्र भाषिक इकाई हैं।”

डॉ० अम्बाप्रसाद ‘सुमन’ कृत परिभाषा—

“वाक्य भाषा की लघुत्तम पूर्ण स्वतंत्र इकाई हैं, जो विचार की ध्वनिमयी सार्थक अभिव्यक्ति हैं। इस ध्वनिमयी सार्थक अभिव्यक्ति में शब्द—समूह भी हो सकता है और एक शब्द भी।”

डॉ० देवेन्द्रनाथ शर्मा कृत परिभाषा—

“भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक इकाई वाक्य ही है।”

इसके अतिरिक्त प्रचीन आचार्यों में से मीमांसानूत्रकार महर्षि जैमिनी का मत है कि एकार्थक पदों के समूह को वाक्य कहते हैं—

“अथैकत्वादेकं वाक्यम्।

एकार्थः पदसमूहो वाक्यम्।”

वैयाकरणों में से पाणिनि का विचार है कि—

“वाक्य में केवल एक तिङन्त पद या एक क्रिया ही नहीं होती अपितु एक से अधिक क्रियाएँ भी हो सकती हैं जैसे—पचति भवति अर्थात् पाक होता है। इस वाक्य में दो क्रियाओं का प्रयोग हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से वाक्य की परिभाषा इस प्रकार होगी—

“व्याकरणिक दृष्टि से लघुत्तम पूर्ण कथन वाक्य है।”

अतः हम निष्कर्ष रूप में कहेंगे कि—

- (1) वाक्य पूर्ण होता है।
- (2) वाक्य शब्दों का समूह है, अथवा वाक्य में एक से अधिक शब्द होते हैं।

काम चलाऊ परिभाषा कुछ इस प्रकार की हो सकती है—

“वाक्य भाषा की वह सहज इकाई है जिसमें एक या अधिक शब्द (पद) होते हैं तथा जो अर्थ की दृष्टि से पूर्ण हो या अपूर्ण व्याकरणिक दृष्टि से अपने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कम से कम एक समापिका क्रिया अवश्य होती है।”

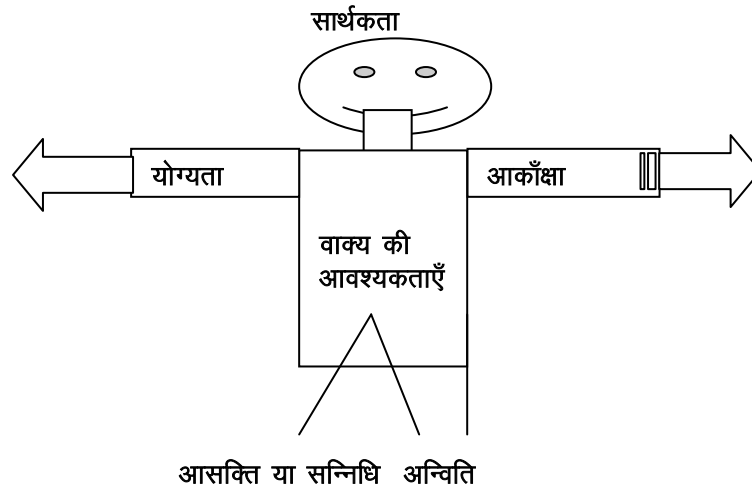
इस परिभाषा में निम्नांकित बातें ध्यान देने योग्य हैं—

- (क) वाक्य भाषा की सहज इकाई है।
- (ख) वाक्य में एक शब्द भी हो सकता है और उससे अधिक भी।
- (ग) वाक्य में अर्थ की पूर्णता हो सकती है और नहीं भी।
- (घ) वाक्य व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण होता है।
- (ङ) व्याकरणिक पूर्णता कभी—कभी संदर्भ पर भी निर्भर करती है।
- (च) वाक्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कम से कम एक समापिका क्रिया या भाव अवश्य होता है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विविध संज्ञा, विशेषण, क्रिया विशेषण आदि से रहित भी वाक्य होता है। अथवा एक पद का भी वाक्य होता है। इस दृष्टि से वाक्य का लक्षण यह हो सकता है कि जो पद या पद समूह अभीष्ट अर्थ की प्रतीति कराने में समर्थ हो उसे वाक्य कहते हैं।

### वाक्य की आवश्यकताएँ:-

वाक्य का निर्माण कुछ मूलभूत आवश्यकताओं के आधार पर होता है। आभाहतान्वयवाद के आधार पर पदों के योग से वाक्य की निष्पत्ति होती है। कुछ लोगों ने वाक्य के लिए तीन चीजों को आवश्यक माना है—आकॉक्षा, योग्यता और आसक्ति। भरतीय दृष्टि से वाक्य की आवश्यकताएँ पाँच हैं—



- (1) **सार्थकता** :- सार्थकता का अर्थ है सार्थक शब्दों का प्रयोग या समूह। कहने का तात्पर्य है कि वाक्य में ऐसे शब्दों का प्रयोग होना चाहिए जो अर्थवान हो, तथा अभीष्ट अर्थ को सही रूप में व्यक्त करने की क्षमता रखते हों।
- (2) **योग्यता** :- योग्यता का अर्थ है पदों के परस्पर अन्वय में बाधा का अभाव। डॉ० देवेन्द्रनाथ की दृष्टि में बाधा दो प्रकार से पड़ सकती है—अर्थ या प्रतीति की दृष्टि से और अन्वय की दृष्टि से। एक का संबंध मन से है और दूसरे का व्याकरण से उदाहरणार्थ:-

लड्डू से पेड़ उगता है।

किताब से आग निकलती है।

इन वाक्यों में प्रतिमूलक बाधा है क्योंकि न तो लड्डू से पेड़ उग सकता है और न किताब से आग निकल सकती है। वैसे व्याकरण ही दृष्टि से संजोये गये हैं। वे व्याकरण की दृष्टि शुद्ध हैं। इसके साथ ही इनमें अर्थगत दोष है। इनसे कोई सटीक अर्थ नहीं निकलता है। अन्वय के आधार पर बाधा वहाँ होती है जहाँ व्याकरण सम्मत नियमों के आधार पर पदों का विन्यास नहीं होता है। उदाहरणार्थ इन वाक्यों को लीजिए योग्यता का अभाव है—

(1) लड़का रोती है। (लिंग विषयक अयोग्यता)

(2) राम ने पढ़ता है। (विभक्ति विषयक अयोग्यता)

ये वाक्य सार्थक हैं किन्तु अर्थ प्रेषित करने में अयोग्य हैं। इसी से अन्वय विषयक योग्यता की कमी हो गई है। पदों की अन्विति में लिंग, वचन, पुरुष, विभक्ति आदि ध्यान अपेक्षित होता है।

- (3) **आसक्ति या सन्निधि** :- इसका अर्थ है नैकट्य या निकटता वाक्य में जो भी पद प्रयोग में लाये जाये वे देश और काल दोनों ही दृष्टियों से परस्पर निकट होने चाहिए यदि वे दूर पड़ेगें तो अर्थ संप्रेषण में बाधा होगी। 'राम' कहने के तुरन्त बाद पढ़ता 'हैं' का प्रयोग और उच्चारण होना चाहिए, यही नैकट्य या समीपता या आसक्ति है। दूसरे प्रकार की आसक्ति वह है जिसमें पद उच्चारित होते हैं किन्तु तुरन्त एक दूसरे से दूर पड़ जाते हैं। यथा—

लड़का सूर्य दौड़ता है, खिलता है, फूल पढ़ता है चमकता है— पदों के सार्थक होने पर भी आसक्ति का क्रम बाधित है। अतः बोध नहीं हो पाता है। इनका सही रूप होगा लड़का दौड़ता है, सूर्य चमकता है, फूल खिलता है, आदि इस प्रकार स्पष्ट है कि आसक्ति, योग्यता और सार्थकता वाक्य के लिए परमावश्यक है। कभी—कभी ऐसे वाक्य भी होते हैं—

बाध। सॉप। भागो। बचाओ।

इनमें अकाँक्षा की निवृत्ति एक पद से ही हो जाती है। पद में आसक्ति की उपेक्षा होती है, इसी से अन्वय और अर्थ में कठिनाई होती है।

- (4) **आकाँक्षा** :- आकाँक्षा का अर्थ है, अर्थ की अपूर्णता यानी जानने की इच्छा। वाक्य में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह पूरा अर्थ दे। ऐसा हो जिसे सुनकर कुछ भी जानने की इच्छा न हो। केवल 'लड़का' शब्द सुनने से श्रोता को संतोष नहीं होता है, वह यह जानने की इच्छा रखता है कि लड़के के संबंध में क्या कहना अभीष्ट है। इससे सिद्ध होता है कि आकाँक्षा एक प्रकार की मानसिक स्थिति है जिसका महत्व श्रोता की दृष्टि से है।

- (5) **अन्विति** :- अन्विति का अर्थ है वाक्यगत एकरूपता व्याकरण की दृष्टि से हो। यह एकरूपता प्रायः वचन कारक, लिंग और पुरुष आदि की दृष्टि से होती है। अतः वाक्य की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता अन्विति है। इसके बिना वाक्य में कोई प्रयोजनीयता और एकरूपता नहीं आ सकती है।

आधुनिक भाषा विज्ञान में एक आवश्यक तत्व और माना है—

- (6) **क्रम** :- इससे तात्पर्य है—पदक्रम। इस संबंध में भी प्रत्येक भाषा में अपने नियम होते हैं। उदाहरणार्थः—

(1) संस्कृत में—रामः पुस्तकम् पठति। अथवा

पठति रामः पुस्तकम् । आदि।

संस्कृत में सामान्यतया वाक्य में पदों का क्रम निश्चित नहीं होता।

(2) हिन्दी में—वाक्य में—कर्ता, कर्म और क्रिया के क्रम से पदों को रखा जाता है जैसे—“राम आम खाता है।” इस वाक्य में पदों का क्रम बदलने से “आम राम खाता है।” यह वाक्य नहीं होगा।

(3) अंग्रेजी में—वाक्य में कर्ता, क्रिया और कर्म के क्रम से पदों को रखा जाता है, जैसे—

“Ram goes to school”

अतः पदक्रम का पालन भी वाक्य के लिए आवश्यक है। उपर्युक्त छः आवश्यक तत्वों के अतिरिक्त लघुत्तम को भी वाक्य का सातवाँ तत्व स्वीकार किया गया है। इसके अनुसार अर्थ की अधिकाधिक पूर्णता के साथ ही वाक्य को लघु से लघु भी होना चाहिए।

प्रश्न.2 वाक्य के प्रकारों—भेदों का सोदाहरण विवेचन करते हुए वाक्य परिवर्तनों के कारणों का विवेचन कीजिए।  
उत्तर. भाषा में प्रयुक्त वाक्यों का वर्गीकरण अनेक आधारों पर किया जा सकता है, जिनमें से निम्नलिखित चार आधार प्रमुख हैं—

### वाक्य के भेद या प्रकार—

- (1) रचना के अनुसार—वाक्य तीन प्रकार के होते हैं।
  - (1) साधारण या सरल वाक्य—जिस वाक्य में एक उद्देश्य और एक विधेय रहता है उसे साधारण वाक्य कहते हैं।  
जैसे—राम पुस्तक पढ़ता है।  
कि सान खेत जोतता है।
  - (2) मिश्र वाक्य—जिस वाक्य में एक प्रधान साधारण उपवाक्य के अतिरिक्त इसके आक्षिप्त कई सहायक उपवाक्य हों उसे मिश्र वाक्य कहते हैं। जैसे—यह सभी जानते हैं कि दिनमें सूरज और रात में चाँद निकलता है। इस वाक्य को हम मिश्र वाक्य कहते हैं क्योंकि इसमें 'यह सभी जानते हैं' प्रधान साधारण उपवाक्य है और 'दिन में सूरज और रात में चाँद निकलता है, आश्रित उपवाक्य है।
  - (3) संयुक्त वाक्य—जिस वाक्य में दो या दो से अधिक समानाधिकरण वाक्य हों और वे एक दूसरे के आश्रित न होकर संयोजक अव्ययों द्वारा जुड़े हुए हों। उसे संयुक्त वाक्य कहते हैं। जैसे—राम घर चला गया और कृष्ण उसके स्थान पर आ गया। यह संयुक्त वाक्य है क्योंकि इसमें दो समानाधिकार वाक्य जुड़े हुए हैं।
  - (4) उपवाक्य—जब दो या अधिक सरल वाक्यों को मिलाकर एक वाक्य बना देते हैं तो उसे एक वाक्य में जो वाक्य मिले होते हैं, उन्हें उपवाक्य कहते हैं।  
उपवाक्य दो प्रकार के होते हैं।
    - (क) आश्रित उपवाक्य—जो प्रधान न होकर गौण अथवा दूसरे के आश्रित हो।
    - (ख) प्रधान उपवाक्य—किसी वाक्य में जो उपवाक्य आश्रित या गौण न होकर प्रधान हों। उपर्युक्त वाक्यों में आश्रित उपवाक्य के अतिरिक्त जो उपवाक्य हैं, प्रधान उपवाक्य हैं—वह छात्र उत्तीर्ण हो जाएगा, जो परिश्रम करेगा।
- (2) अर्थ के अनुसार वाक्य के भेद :- अर्थ की दृष्टि से वाक्य के प्रभेद होते हैं जो उपर्युक्त साधारण मिश्र और संयुक्त व उपवाक्य में प्रयुक्त हो सकते हैं। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।—
  - (1) विधानात्मक वाक्य—जिस वाक्य में किसी बात का होना पाया जाए उसे विधानात्मक वाक्य कहते हैं—
    - (क) साधारण—राम पुस्तक पढ़ता है।
    - (ख) मिश्र वाक्य—जब राजा ने नगर में प्रवेश किया तो नगर में आनन्द की लहर दौड़ पड़ी।
  - (2) निषेधात्मक वाक्य—जिस वाक्य से किसी बात का निषेध पाया जाए उसे निषेधात्मक वाक्य कहते हैं।
    - (क) साधारण वाक्य—मैंने आज भोजन नहीं किया।
    - (ख) मिश्र—वह नहीं जानता कि कौन अपराधी है।
    - (ग) संयुक्त—श्रेष्ठ मनुष्य कभी कसी को नहीं सताते और न किसी को अपशब्द ही कहते हैं।
  - (3) प्रश्नवाचन वाक्य—जिनसे प्रश्न का बोध हो, उन्हें प्रश्नवाचक वाक्य कहते हैं—

- (क) साधारण—आप कहाँ जा रहें हों ?
- (ख) मिश्र—क्या आपको विदित है कि कलिदास की कौन—कौन सी पुस्तकें हैं।
- (ग) संयुक्त—प्रसाद कौन थे और उन्होंने कौन—कौन संग्रंथ रचे ?
- (4) आदेशात्मक या आज्ञार्थक वाक्य—जिनमें आज्ञा या आदेश का भाव हो।
- (क) साधारण वाक्य—बड़ों का कहना मानो।
- (ख) मिश्र—सभी काम समय पर करो,जिससे किसी को बुरे न लगे।
- (ग) संयुक्त—घर जाओ और मेरी पुस्तक लाओ।
- (5) विस्मयात्मक वाक्य—जिससे आश्चर्य का बोध हो।
- (क) साधारण—क्या ही अद्भूत घटना हैं।
- (ख) मिश्र—जो काम आपने किया वह तो क्या ही अनोखा हैं।
- (ग) संयुक्त—तुमने इतना अच्छा काम किया और मुझे सूचना भी नहीं दी।
- (6) इच्छाबोधक वाक्य—जिन वाक्यों से इच्छा या आर्शीवादात्मक का भाव सूचित हो।
- (क) साधारण—आपकी इच्छाएँ पूर्ण हों।
- (ख) मिश्र—ईश्वर कृपा करें आप दीर्घजीवी हों।
- (ग) संयुक्त—आप सुखी रहें और देश सेवा में लगे रहें।
- (7) सन्देह सूचक वाक्य—जिन से किसी प्रकार का सन्देह हो।
- (क) साधारण—शायद वह आज आ जाए।
- (ख) मिश्र—जो पत्र मिला है वह सम्भवतः उस लड़के ने लिखा होगा।
- (ग) संयुक्त—नौकर वहाँ से चला होगा और सिपाही वहाँ पहुँचा होगा।
- (8) संकेतार्थ वाक्य—जिनमें कोई शर्त का भाव हो।
- “यदि राम परिश्रम करता तो अवश्य परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता।”
- (9) संसयात्मक—वह आयेगा कि नहीं!
- (3) **क्रिया के अनुसार** :- प्रायः तो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से क्रिया सभी भाषाओं के वाक्यों में पायी जाती हैं, किन्तु संस्कृत लैटिन आदि कुछ प्राचीन तथा रूसी,बंगला आदि कुछ नवीन भाषाओं में, बिना क्रिया के वाक्य भी मिलते हैं जिसके आधार पर वाक्यों के दो प्रकार हैं—
- (1) क्रियायुक्त वाक्य—प्रायः सभी वाक्य इसी कोटि के होते हैं।
- (2) क्रिया रहित वाक्य—जैसे संस्कृत में तर्पणम् ! पिण्डीम्! आदि जैसे समाचार पत्रों के शीर्षकों,लोकोक्तियों,विज्ञापनों आदि में प्रायः क्रिया विहीन वाक्य का ही प्रयोग होता है।
- (4) **आकृति मूलक वाक्य** :- आकृति से तात्पर्य है—रूपतत्त्व या संबंध तत्त्व। भाषाओं के आकृतिक वर्गीकरण में भी इसी को ध्यान में रखा जाता है। आकृति के आधार पर वाक्यों के चार वर्ग हैं।—
- (1) अयोगात्मक वाक्य—यहाँ आयोग से तात्पर्य—प्रकृति (मूल शब्द) के साथ संबंध तत्त्व के योग का अभाव। ऐसे वाक्यों में पद पृथक रहते हैं। चीनी आदि एकाक्षर परिवार की अयोगात्मक भाषाओं में वाक्य पूर्णतया इसी प्रकार के होते हैं।

संक्षेप में, संयोगात्मक भाषाओं की अपेक्षा वियोगात्मक भाषाओं में इस प्रकार के वाक्य अधिक मिलते हैं। अयोगात्मक वाक्यों में पदक्रम या वाक्य में पद के स्थान का विशेष महत्व है, जैसे—

“नो ता नी” (मैं तुझे मारता हूँ)

“नी ता ना” (तू मुझे मारता है।)

चीनी भाषा के इस वाक्य में पद के स्थान परिवर्तन से वाक्य के अर्थ में भी परिवर्तन हो जाता है अयोगात्मक वाक्यों की यही प्रमुख विशेषता है।

(2) अश्लिष्टयोगात्मक वाक्य—यहाँ अश्लिष्ट से तात्पर्य—प्रकृति के साथ जुड़ने वाले प्रत्यय (रूप या संबंध तत्त्व) का बहुत अधिक न मिलना प्रकृति से पृथक् रहना। अश्लिष्ट योगात्मक वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय इस प्रकार जुड़ते हैं कि उन्हें पृथक्-पृथक् जाना जा सकता है। “तुर्की” आदि भाषाओं में इसी प्रकार के वाक्य होते हैं—

सेव (प्रकृति)+एर—इन(प्रत्यय)—सेवेरिम—(मैं प्यार करता हूँ)

(3) श्लिष्ट योगात्मक वाक्य—इन वाक्यों में प्रकृति तथा प्रत्यय परस्पर धनिष्ठता जुड़े रहते हैं। वाक्यों में, प्रत्यय को विभक्ति कहा जाता है। प्रत्यय की भाँति इन विभक्तियों को प्रकृति से पृथक् पहचानना कठिन होता है। इन वाक्यों में प्रकृति तथा प्रत्यय का अस्तित्व घुल मिल जाता है। भारोपीय परिवार की संस्कृत आदि भाषाओं के वाक्य इसी प्रकार के होते हैं—

रामःपुस्तकं पठति—(राम पुस्तक पढ़ता है।)

(4) प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य—इन वाक्यों में प्रकृति तथा प्रत्यय इतनी प्रकर्षता के साथ मिले रहते हैं कि वाक्य में पदों को पृथक्-पृथक् करना या पहचानना कठिन हो जाता है। उत्तरी अमरीका की ‘चेरोकी’ तथा ‘एरिकमो’ आदि भाषाओं में वाक्य इसी प्रकार के होते हैं। उदाहरण के लिए ‘चेरोकी’ भाषा का यह प्रसिद्ध वाक्य दृष्टव्य है—

नाधोलिनिन—(हमारे लिए नाव लाओ।)

यद्यपि इस वाक्य में—नातेन+अभोखोल मनिन इन तीन पदों की कल्पना की जाती है, किन्तु निश्चयात्मक रूप से यह कहना कठिन है, कि इसमें यही तीन पद हैं।

(5) **शैली—मूलक भेद** :- शैली के आधार पर वाक्यों के तीन भेद किए गए हैं—

(1) शिथिल वाक्य—इसमें अलंकृत या मुहावरेदार वाक्य की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। वक्ता या लेखक मनमाने ढंग से बात कहता है—एक थी रानी कुन्ती, उसके पाँच पुत्र, एक का नाम युधिष्ठिर, एक का नाम भीम, एक का नाम कुछ और एक का नाम कुछ और एक का नाम भूल गया।

यह कथावाचकों आदि की शैली होती है।

(2) समीकृत वाक्य—इसमें संतुलन और संगति का ध्यान रखा जाता है। जैसे—यस्यर्थोःतस्य मित्राणि (जिसके पास पैसा, उसी के मित्र) यतो धर्मस्ततो जयः इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट यथा राजा तथा प्रजा, जिसकी लाठी उसकी भैंस, न घर का न घाट का।

समीकृत वाक्य विरोधमूलक भी होते हैं। जैसे—कहाँ हंस कहाँ बगुला, कहाँ राजा कहाँ रंक, कहाँ शेर कहाँ सूअर। समीकृत वाक्य संतुलन आदि गुणों के कारण लोकोक्ति के रूप में प्रचलित हो जाते हैं।

(3) आवर्तक वाक्य—इसमें कथनीय वस्तु अन्त में दी जाती हैं। श्रोता की जिज्ञासा अन्तिम वाक्य सुनने पर ही पूर्ण होती है। यदि अगर आदि लगाकर वाक्यों को लम्बा किया जाता है। जैसे—यदि सुख चाहिये, यदि शक्ति चाहिए, यदि कीर्ति चाहिए, यदि अमरता चाहिए तो विद्याध्यन में मन लगाओ।

डॉ० पीताम्बर सरोदे ने अपनी पुस्तक सर भाषा विज्ञान में इसके चार भेद दिए हैं—

1. समास प्रधान वाक्य
2. व्यास प्रधान वाक्य
3. प्रत्यय प्रधान वाक्य
4. विभक्ति प्रधान वाक्य।

**वाक्य परिवर्तन के कारण: एक भाषा पर अन्य भाषा का प्रभाव:—** भाषा एक भाषा—भाषी दूसरे के निकट सम्पर्क में आते हैं तो एक भाषा के वाक्य गठन पर दूसरी भाषा के वाक्य गठन का किंचित प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए हिन्दी वाक्य गठन पर अंग्रेजी वाक्य गठन के प्रभाव पड़े हुए हैं। अंग्रेजी में डाइरेक्ट और इन डाइरेक्ट नरेशन होते हैं जिनमें इनडाइरेक्ट बरते हुए उत्तम पुरुष अन्य पुरुष में बदल जाता है।

जैसे—**Ram told shyam that he would go to school** अर्थात् राम ने श्याम से कहा कि वह स्कूल जाएगा। हिन्दी की प्रकृति के अनुसार 'वह स्कूल जाएगा' के स्थान पर 'मैं स्कूल जाऊँगा होना चाहिए, किन्तु अंग्रेजी के प्रभाव से इस प्रकार के वाक्य हिन्दी में चल निकलते हैं। इसी प्रकार विशेषण उपवाक्य का बीच में आ जाना अंग्रेजी का ही प्रभाव है। हिन्दी में कहा और लिखा जाने लगा है कि 'रमेश, जो मेरे मित्र का पुत्र है, आजकल विश्वविद्यालय में प्रध्यापक हो गया है।'

इसी प्रकार निक्षिप्त उपवाक्य भी प्रबुद्ध हो गया है। 'मेरा मत चाहै' आप स्वीकार करें या न करें सर्वथा स्पष्ट और निष्पक्ष है।

- (2) **जटिलता से सरलता की ओर** :— जिस प्रकार ध्वनि और रूप परिवर्तन में प्रयत्न लाघव की प्रकृति मुख सुख के लिए होती है उसी प्रकार अभिव्यक्ति में भी वाक्यों की जटिलता छोड़कर सरलता की ओर बढ़ने की स्वाभाविक मनोवृत्ति काम करती है।
- (3) **स्पष्टता** :— स्पष्टता के लिए भी वाक्यों में परसर्गों का प्रयोग होने लगता है। प्राकृत तथा अपभ्रंश में विभक्तियों के रहते हुए भी सहायक शब्दों का प्रयोग इसी कारण प्रारम्भ हुआ था, जो बाद में पर सर्गों के रूप में दिखायी पड़ती हैं। इसी प्रकार एक वाक्य के स्थान पर कई वाक्य या उपवाक्यों का प्रयोग, वाक्य के मध्य 'डेश' (—) का प्रयोग, वाक्य में अधिक 'पदों' का प्रयोग आदि का कारण भी यह स्पष्टता लाने की प्रवृत्ति ही होती है और इसके कारण भी वाक्य में परिवर्तन हो जाता है।
- (4) **प्रयत्न लाघव** :— प्रयत्न लाघव के लिए भी जगह अवकाश रहता है। अतः भाषा के अन्य अंगों की भाँति वाक्य परिवर्तन में भी वह कारण रूप में रहता है। वाक्यों में कुछ प्रत्ययों तथा पदों का लोप इसी का परिणाम है। जैसे—आँखों से देखी बात सच होती है। के स्थान पर आँखों देखी बात सच होती है। आदि।
- (5) **बलाघात** :— अनेक बार वाक्य के किसी विशेष पद के महत्व को प्रकट करने के लिए वक्ता उस पर बल का प्रयोग करता है। ऐसा करने में प्रायः बलाघात वाले पद का स्थान भी वाक्य के आदि या अन्त में हो जाता है जैसे—'खाना अभी नहीं खाया है?' सामान्य दशा में वाक्य होता है "अभी खाना नहीं खाया है।"

- (6) **मानसिक स्थिति** :- भाषा में वाक्यों की रचना पर वक्ता की मानसिक स्थिति का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। यदि किसी बाह्य अथवा आन्तरिक कारण से वक्ता क्षुब्ध है, घबराया हुआ है, तो उसकी भाषा में वाक्य छोटे-छोटे और पदक्रम अव्यवस्थित रहता है। यही कारण है कि युद्ध कालीन भाषा तथा शान्तिकालीन भाषा में बड़ा अन्तर रहता है। शान्ति-काल में भाषा में 'प्रयुक्त वाक्यों में व्यवस्था अधिक रहती है।
- (7) **विभक्तियों का घिसाव** :- भाषा के विकास में विभक्तियाँ घिस जाती हैं। उनके घिसते ही नए प्रयोगों की सहायता लेनी पड़ती है। जिस प्रकार पाँव के जख्मी होने या कट जाने पर बैसाखी की सहायता से आदमी चलता है उसी प्रकार जब भाषा का कोई अंग काल की धारा से टूटता है तो उसे स्वतः कोई अन्य रूप लेना पड़ता है। संस्कृत की धातुएँ संयुक्त थी। कालान्तर में धातुओं के संयोगात्मक रूप कृदन्तों के रूप में नियुक्त हुए और शब्द विभक्तियाँ घिसी।
- (8) **साधारण से असाधारण की ओर आकर्षण** :- भाषा की अभिव्यक्ति मूल तत्ता साधारण होती है। ज्ञान वृद्धि होने पर उस प्रकार के वाक्य हीन प्रतीत होने लगते हैं। सरल से मिश्र की ओर बढ़ना स्वाभाविक होता है। अधिक सौंदर्य और प्रभाव उत्पन्न करने के लिए बहुत बड़े वाक्य लिखे जाते हैं। बाणभट्ट ने कादम्बरी में इतने बड़े वाक्य लिखे हैं कि दो-दो पृष्ठ के बाद एक वाक्य समाप्त होता था। वाक्यों को प्रभावशाली बनाने के लिए विशेषण उपवाक्य, निक्षिप्त उपवाक्य, उद्धरण रूपक आदि के द्वारा उन्हें विशालकाय और अर्थगर्भित किया जाता है। इस प्रकार वाक्य गठन में बहुत परिवर्तन आ जाता है।
- (9) **बोलने वालों की मनः स्थिति** :- प्रायः देखा जाता है कि मन की स्थिति के अनुसार वाक्यों का गठन होता है। क्रोध में वाक्य जटिल, अपूर्ण, अव्यवस्थित और प्रायः अशुद्ध होते हैं। प्रेम में आलंकारिता, लाक्षणिकता माधुर्य और प्रवाह के कारण वाक्य परिमार्जित और लम्बे होते हैं। शोक या जुगुत्सा की स्थिति में काव्यों में पुनरुक्ति, निरलंकारिक और उदासी का वातावरण होता है। गम्भीर चिन्तन में वाक्य जटिल बड़े उलझे हुए और गूढ़ होते हैं जबकि कथा-कथन या कहानी लेखन में उनमें मुहावरेदारी और प्रवाह की प्रधानता होती है।
- (10) **अज्ञान** :- अज्ञान के कारण भी, वाक्यों में अधिक पदों का प्रयोग होने से वाक्य परिवर्तन हो जाता है। अनेक वक्ता दरअसल, दरहकीकत, सज्जन आदि शब्दों के स्थान पर वाक्यों में दरअसल में दरहकीकत में सज्जन पुरुष आदि का प्रयोग करते हैं जिससे वाक्य-रचना में परिवर्तन हो जाता है।
- (11) **नवीनता का प्रयास** :- अनेक वक्ता तथा लेख अपनी भाषा में नवीनता लाने के लिए वाक्यों में नये-नये प्रयोग करते हैं इस प्रयास में वाक्य में प्रचलित पदक्रम को बदल दिया जाता है जैसे- 'यह स्थान मनुष्य मात्र के लिए है।' के स्थान पर यह स्थान मात्र मनुष्यों के लिये है।
- निष्कर्ष** :- सारांश यह है कि वाक्य गठन में जो परिवर्तन आते हैं उनका अध्ययन बड़ा मनोरंजक है। ध्वनि परिवर्तन अर्थ परिवर्तन या रूप परिवर्तन की अपेक्षा यह विषय अधिक गम्भीर और गवेषणात्मक है।

प्रश्न.1 अर्थ विज्ञान के स्वरूप को समझाते हुए उसके परिवर्तन के कारण और उसकी दिशाओं का विवेचन कीजिये।  
उत्तर. अर्थ विज्ञान में दो शब्द हैं—अर्थ और विज्ञान। इन दोनों शब्दों को एक साथ रखने से सामान्य अर्थ यह निकलता है कि अर्थ विज्ञान का विज्ञान है। यह वह विज्ञान है, जिसके अन्तर्गत भाषा के अर्थ पक्ष का वैज्ञानिक अध्ययन विवेचन और विश्लेषण किया जाता है। अर्थ विज्ञान वर्णनात्मक, ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक तीन प्रकार होता है। अर्थ विज्ञान के विषय में विद्वान और विशेषकर भाषा विज्ञानी एकमत नहीं हैं।

भाषा विज्ञान में जिस प्रकार भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों तथा रूपों आदि पर विचार किया जाता है, उसी प्रकार अर्थ पर भी विचार किया जाता है। भाषा विज्ञान के एक अंग के रूप में अर्थ संबंधी विवेचन को आजकल हिन्दी में अर्थ विचार तथा अंग्रेजी में सेमण्टिक्स कहा जाता है। अंग्रेजी में इसका नामकरण फ्रांसीसी विद्वान, 'ब्रील' (Michel Breal) द्वारा सर्वप्रथम प्रयुक्त हुआ था।

**अर्थ विज्ञान का अर्थ व स्वरूप** :- जिस प्रकार शब्द के स्वरूप की चर्चा की गयी है उसी प्रकार अर्थ के स्वरूप की चर्चा भी आवश्यक है। अर्थ का लक्षण अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकारों से किया है। कुछ विद्वानों के मत इस प्रकार हैं—

वाक्य पदीयकार भर्तृहरी कहते हैं—

“यस्मिस्तच्चरिते शब्दे यदा ओ अर्थः प्रतीयते।

तमाहुरर्थं तस्थैव नान्यर्थस्थ लक्षणम् ।।

अर्थात् शब्द के उच्चारण से जिसकी प्रतीति होती नहीं उसका अर्थ है, अर्थ का कोई दूसरा लक्षण नहीं है।

महाभाष्यकार महर्षि पतंजलि के अनुसार—

“अर्थ शब्द की अन्तरंग शक्ति का नाम है। समस्त शब्द अपने—अपने अर्थ का बोध कराने के लिए होते हैं, परन्तु जिस—जिस अर्थ के बोध के लिए शब्द का प्रयोग होता है वही उसका अर्थ होता है।”

कैयट और नागेश्वर के अनुसार—

“समस्त शब्द जिस प्रवृत्ति निमित्त के लिए अर्थात् जिस वाच्यार्थ का बोध कराने के लिए प्रयुक्त होते हैं वही प्रवृत्ति निमित्त रूप वाच्यार्थ उन शब्दों का अर्थ होता है।”

जयन्त के अनुसार—

“जिस शब्द से जिस अर्थ की प्रतीति होती है वही उसका अर्थ होता है।”

कुमारिल भट्ट के अनुसार—

“जो अर्थ जिस शब्द के साथ सम्बद्ध रहता है वह उसका अर्थ होता है अर्थात् किसी शब्द का अर्थ वह है जो उसके साथ सदैव विद्यमान रहता है और उस अर्थ को छोड़ता नहीं।”

भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानों ने भी अर्थ के बारे में प्रर्याप्त अध्ययन और मनन किया है।

डॉ० शिलर का मत है—

“अर्थ और कुछ नहीं, वह अनिवार्यतः वैयक्तिक होता है क्योंकि किसी वस्तु का अर्थ उस व्यक्ति पर निर्भर करता है जिसे वह वस्तु अभिप्रेत होती है।”

डॉ० रसल का मत है—

“संबंध विशेष को अर्थ कहते हैं क्योंकि किसी शब्द में केवल अर्थ ही नहीं होता अपितु वह अपने अर्थ से सम्बन्ध रहता है और इस ‘सम्बन्ध’ विशेष का स्मृति से अत्यधिक गहरा संबंध होता है।”

एलफ्रेड सिजविक—

“परिणाम अर्थ का आधार होता है और अर्थ सत्य का अतः परिणाम ही अर्थ माना जाता है।”

डॉ० हर्बर्ट पानन्स के अनुसार—

“अर्थ का संबंध हमारी चेतना से है जिसके अन्तर्गत अर्थ के आदिम बीज धन रूप में या ऋण रूप में विद्यमान रहते हैं। ये तत्व ही पुनः संगठित एवं संश्लिष्ट हो कर किसी अनुभव के ‘अर्थ’ का रूप धारण करते हैं।”

डॉ० जे.एस.मूर के अनुसार—

“मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अर्थ वस्तुतः सन्दर्भ या प्रकरण होता है, अर्थात् प्रत्येक अनुभव में अथवा उत्तेजना एवं कल्पना के समूह में, सम्बद्ध प्रतिरूप एक सन्दर्भ या प्रकरण का सा रूपधारण कर लेते हैं। वही सन्दर्भ या प्रकरण समस्त उत्तेजनों तथा कल्पनाओं को संश्लिष्ट बनाकर एक निश्चित ‘अर्थ’ को उत्पन्न करता है।”

डाग्डन व रिचर्ड्स के अनुसार—

“अर्थ वह मानसिक तत्व है जो एक ओर घटनाओं तथा विषयों के बीच तथा दूसरी ओर उनके लिए प्रयोगों में लाए जाने वाले प्रतीकों तथा शब्दों के बीच का सम्बन्ध होता है।”

प्रो० फर्थ के अनुसार—

“अर्थ सन्दर्भ या प्रकरण संबंधी व्यवहार शैली है क्योंकि जब हम किन्हीं शब्दों का उच्चारण करते हैं तब उन ध्वनियों के कारण वायु और श्रोतों के मान की शष्कुलियाँ विकृत होती हैं और ये ध्वनियाँ तत्रत् सामाजिक संदर्भ में तत्त्वत् अर्थ की प्रतीति कराती हैं जो वस्तुतः प्रकरण या संदर्भ के अन्य तत्वों के सम्बन्ध व्यवहार शैली मात्र हैं।”

**अर्थ परिवर्तन के प्रमुख कारण :-**

भाषा एक जीवन्त सत्ता है और कालान्तर्गत किसी भी वस्तु की भाँति परिवर्तन के प्रति नतानन है। इसी कारण उसके विकास क्रम में कभी तो शब्द अपने अर्थ को परिवर्तित कर लेते हैं, कभी शब्द नए रूपों को प्राप्त होते हैं और कभी ऋण ली हुई अभिव्यक्तियाँ क्रियाशील हो जाती हैं। अर्थ परिवर्तन की दो मूलभूत प्रवृत्तियाँ हैं—(1)

कोई शब्द नवीन वस्तुओं को प्रकाशित करने लगता है। (2) कोई शब्द नए ढंग से किसी वस्तु को व्यक्त करने लगता है।

अर्थ परिवर्तन के प्रमुख कारण :- मनुष्य सदैव परिवर्तन की ओर आकर्षित रहता है। अर्थ का संबंध किसी न किसी रूप में मनुष्य के मन से है। स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि जब मनुष्य का मन परिवर्तनशील होता है तो अर्थ जिसका संबंध मन से है, परिवर्तित हो तो आश्चर्य क्या है? डॉ० हरीश न लिखा है कि—

“अर्थ प्रयोक्ता की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का प्रतिफल है।”

- (1) **शब्दों का अधिक प्रयोग :-** शब्दों के अधिक प्रयोग से उनकी शक्ति नष्ट हो जाती है और वे अप्रिय लगते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जो शब्द किसी एक अर्थ में प्रयुक्त होता था उस अर्थ का महत्व कम हो जाता है और इस

प्रकार अर्थ का परिवर्तन स्वाभाविक हो जाता है। उदाहरण के लिए शास्त्री, पंडित, श्रीमान्, बाबू, अनेक शब्दों की सूची गिनाई जा सकती है।

- (2) **अलंकार का प्रयोग** :- अपने मन के भावों को स्पष्ट करने के लिए मनुष्य ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है जो उन्हें मूर्त रूप दे देते हैं। वस्तुतः भाव साम्य, धर्म साम्य आदि इस प्रक्रिया के मूल कारण होते हैं। साहित्यिक भाषा में उन्हीं का नाम अलंकार, उपमा, रूपक आदि हैं।

तात्पर्य यह है कि आलंकारिक प्रयोग के अरूप भाव सरूप वस्तुओं की भांति सगुण हो जाते हैं और अर्थ में विस्तार या संकोच हो जाता है। छुई-मुई एक पौधे का नाम इसलिए रखा गया है कि उसको छूते ही वह मुरझा जाता है। इसे 'लाजवन्ती' भी कहते हैं। सिन्धु नदी का नाम सिन्धु इसलिए पड़ा कि वह सागर की भांति बहुत बड़ी नदी थी। उसके पास के प्रदेश को भी लोग सिन्धु कहने लगे तथा वहाँ पर जो नमक के पहाड़ थे, उनके नमक को सैन्धव (नमक) कहा जाने लगा।

सारंश यह है कि परिचित पदार्थों के गुणसाम्य के कारण अनेक शब्दों के अर्थ में विकास हुआ है।

- (3) **भौतिक साधनों में परिवर्तन** :- आज जीवन में नयी साधन सामग्री को अपना लेने पर भी हम प्राचीन शब्दों का प्रयोग करते रहते हैं। परिणामस्वरूप, शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ-पहले 'पत्र' शब्द से तात्पर्य था-वृक्ष के पत्र पर लिख हुआ समाचार और अब कागज पर लिखे हुए समाचार की ही पत्र कहते हैं।
- (4) **लाक्षणिक प्रयोग** :- अनुभूति की ठीक-ठीक अभिव्यक्ति के लिए लाक्षणिक प्रयोग किये जाते हैं। जैसे किसी की वीरता से प्रभावित होकर उसे 'सिंह' कह देते हैं। इसी प्रकार भीरु को 'गीदड़' मूर्ख को गधा, भोले स्वभाव के व्यक्ति को शाय तथा अपकारी का साँप, बिच्छु भी हम अकस्मात् ही कह उठते हैं।
- (5) **प्रकरण भेद** :- प्रकरण भेद के कारण भी शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है 'सैन्धव' शब्द इस विषय का बड़ा प्रसिद्ध उदाहरण है। भोजन के प्रसंग में इसका अर्थ नमक हो जाता है तथा यात्रा के प्रसंग में घोड़ा क्योंकि दोनों ही सिन्धु प्रदेश में उत्पन्न होने से सैन्धव कहलाते हैं।
- (6) **व्यंग्य** :- इसके कारण भी शब्दों के अर्थों में परिवर्तन हो जाता है। संस्कृत काव्यशास्त्र में इसे विपरीतलक्षणा कहा गया है। उदाहरणार्थ-मूर्ख को वृहस्पति, अपकारी को उपकारी कृपण को दानवीर कर्ण, झूठे को सत्यवादी हरिश्चन्द्र आदि कहना यहाँ वृहस्पति आदि शब्द बिल्कुल विपरीत अर्थ को कहते हैं।
- (7) **भावुकता** :- इस कारण भी शब्दों के अर्थ, बदल जाते हैं। प्रायः माता-पिता बच्चों को लाड़-प्यार में गधा, सूअर, आदि कह देते हैं। इसी प्रकार क्रोध में भी उल्लू आदि कह दिया जाता है। निश्चय ही यहाँ वक्ता का अभिप्रायः इन शब्दों के वास्तविक अर्थ से नहीं होता है।
- (8) **शब्दार्थ में एक तत्व की प्रधानता** :- कभी-कभी किसी शब्दार्थ के स्थान पर उसके केवल एक तत्व से ही उस पदार्थ का ज्ञान होने लगता है। उदाहरणार्थ- लाल पगड़ी ही सिपाही नहीं है किन्तु उसका अर्थ सिपाही हो गया है।
- (9) **संक्षेपीकरण** :- इस कारण भी शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं। हस्तिन् का अर्थ था हाथवाला या सूंडवाला इसके साथ मृग शब्द जोड़कर हाथी अर्थ किया जाता है।
- (10) **शब्दकोश** :- भाषा में शब्दकोशों की रचना के कारण भी शब्दों के अर्थ बदलते हैं। वस्तुतः किसी भी भाषा का कोई भी शब्द किसी दूसरे शब्द का पर्याय नहीं होता है। प्रत्येक शब्द का अपना अर्थ निश्चित होता है, किन्तु शब्द कोशों में प्रायः एक शब्द के अनेक पर्याय दिये रहते हैं जैसे-सर्पः पृदाकुर्भुजगो भुजडोडहि भुर्जडम । (अमरकोश)

यहाँ सर्प के लिए कई नाम गिनाए जा सकते हैं।

- (11) **भौगोलिक परिवेश में अन्तर** :- पंचभूतों से बना मानव का शरीर अपने चारों ओर के भौगोलिक परिवेश या वातावरण से प्रभावित होता है। उसके भौगोलिक वातावरण में परिवर्तन होने पर उसके व्यवहार में आने वाली वस्तुओं में भी परिवर्तन हो जाता है। अपने मस्तिष्क पर अधिक भार डालने से बचने के लिये वह अनजाने ही, पुरानी परिचित वस्तुओं के नामों का संबंध नयी वस्तुओं से जोड़ लेता है। इस प्रकार उसके शब्द तो पुराने होते हैं किन्तु उनका नया हो जाता है। जैसे ऋग्वेद में उष्ट्र शब्द भैंसा तथा ऊँट दोनों अर्थों में भौगोलिक वातावरण में रहते थे तब वे उष्ट्र (मूलार्थ—भूरे रंग का पदार्थ) भैंसे को कहते थे किन्तु जब वे भौगोलिक दृष्टि से उष्ण प्रदेश में पहुँच तो उन्होंने वहाँपर एक नये पशु ऊँट को देखा, जो रंग—रूप में भैंसे से मिलता था। परिणाम स्वरूप आर्यों ने अपना शब्द का प्रयोग उसी के लिए प्रारम्भ कर दिया।

- (12) **सामाजिक परिवेश में परिवर्तन** :- पहले की अपेक्षा आज का सामाजिक वातावरण बदला हुआ है। पहले सम्मिलित परिवार प्रथा थी उस सीमित समाज में युवक युवतियों का सम्पर्क भी सीमित था। तब भाई—बहिन शब्द में पर्याप्त पवित्रता थी। बहन—भाई तथा पत्नी—पति के अतिरिक्त तब किसी सम वयस्क युवती—युवक का सम्पर्क होने की सम्भावना नहीं होती थी।

सामाजिक परिवेश का ही परिणाम है कि भारत के किसी एक भाग में भाभी द्रोपदी का प्रतीक है तो किसी दूसरे भाग में सीता का।

- (13) **राजनैतिक परिवेश में परिवर्तन** :- इसी परिवर्तन का परिणाम है कि आजकल क्रान्ति शब्द का पहले जैसे अर्थ नहीं रहा है। पहले बिना रक्तपात के किसी राज्यसत्ता को नहीं बदला जा सकता था। अतः क्रान्ति का अर्थ था रक्तपात द्वारा अर्जित राज्यसत्ता।

गांधी जी के प्रभाव से बाद में अहिंसक क्रान्ति का युग आया भूतू क्रान्तिदल, हरित क्रान्ति या वैज्ञानिक क्रान्ति, जिसमें क्रान्ति शब्द का अर्थ केवल परिवर्तन ही रह गया है। रक्तपात की प्रबल भावना अब उसमें नहीं रही है।

- (14) **सांस्कृतिक परिवेश में अन्तर** :- वर्णाश्रम व्यवस्था प्रधान प्राचीन भारतीय संस्कृति के परिवर्तन के कारण तत्कालीन शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन हो गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र आज अपने पुरातन अर्थ को नहीं कहते हैं। आज ज्ञान के बिना भी व्यक्ति ब्राह्मण, क्षति से रक्षा न करने वाला भी क्षत्रिय आदि कहलाता है।

- (15) **धार्मिक परिवेश में परिवर्तन** :- धार्मिक वातावरण के बदलने से भी शब्दों के अर्थों में परिवर्तन हो जाता है। जैसे—प्राचीन काल में यज्ञ करना—कराना, वेद पाठ करना, श्राद्ध करना आदि धार्मिक कार्यों को करने के कारण याज्ञिक, अग्निहोत्री, वेदपाठी द्विवेदी, चतुर्वेदी, त्रिपाठी, यजमान आदि संज्ञा—शब्द उन—उन कर्मों को करने वाले के लिए प्रचलित थे। आजकल ये सब नाम आदि संज्ञाएँ कुलनाम बनकर रह गयी हैं।

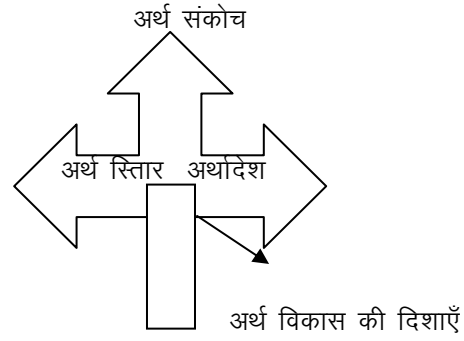
आजकल प्रदर्शन की भावना का धार्मिक क्षेत्र में बड़ा जोर है। अतः पहले जहाँ केवल एक व्यक्ति द्वारा ही ईश्वर का नाम लेना कीर्तन कहलाता था, वहाँ आज मंडली बनाकर, सामूहिक रूप से ईश्वर का नाम लेना ही कीर्तन हो गया है।

डॉ० तारापुरवाला ने अपनी पुस्तक 'एलिमेण्ट्स ऑफ दि साइन्स ऑफ लैंग्वेज' में अर्थ विकास के 12 कारणों का उल्लेख किया है। कुछ अन्य ग्रंथों में इस कारणों की संख्या कुछ अधिक भी मिलती है। अर्थ— विकास या अर्थ परिवर्तन के जिन कारणों का उल्लेख विद्वानों ने किया उनका उपर्युक्त विवेचन किया गया है।

**अर्थ विकास की दिशाएँ :-**

भाषा में प्रयुक्त शब्दों और उनके अर्थों का विचार हमारे देश में प्राचीन काल से ही होता चला आ रहा है। यास्क, पतंजलि भर्तृहरि तथा संस्कृत काव्य शास्त्रकारों ने इस विषय पर विस्तार से विचार किया है। अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना शब्द शक्तियों के द्वारा शब्दों के अर्थों का निश्चय और उनके परिवर्तन का पर्याप्त विवेचन प्राचीन आचार्यों ने किया है। लक्षणा और व्यंजना के बिना तो वस्तुतः अर्थ परिवर्तन का आधार ही नहीं बनता है।

आधुनिक काल में, नवीन रूप में भाषा विज्ञान का विकास होने पर अर्थविचार के क्षेत्र में प्रख्यात फ्रांसीसी विद्वान 'ब्रिल' ने पर्याप्त ख्याति अर्जित की है। उन्होंने अर्थ विकास की 3 दिशाएँ मानी हैं।



इस आधार के अतिरिक्त अर्थविकास की दिशाएँ को एक अन्य आधार गुण भी हो सकता है। गुण को आधार मानकर विद्वानों ने अर्थ विकास की दो अन्य दिशाओं का भी उल्लेख किया है—

गुण के आधार पर अर्थ विकास की दिशाएँ:-



यहाँ प्रथमता ब्रिल महोदय द्वारा उल्लेखित अर्थ विकास की दिशाओं को स्पष्ट किया जा रहा है—

(1) **अर्थ विकास/अर्थ विस्तार** :- अर्थ विस्तार से अभिप्राय है किसी अर्थ विशेष के क्षेत्र का पूर्व की अपेक्षा बढ़ जाना विस्तृत हो जाना। जब पहले किसी शब्द के अर्थ का क्षेत्र सीमित हो और बाद में उसकी सीमा का विस्तार हो जाये तो उसे अर्थ विस्तार की दिशा माना जायेगा। उदाहरण के लिये

(1) **प्रवीण** शब्द का अर्थ पहले 'पृकृष्टो वीणायाम्' अर्थात् वीणावादन में बढ़ा-चढ़ा था। बाद में किसी भी कार्य में आगे रहने वाले को प्रवीण कहा जाने लगा। इस प्रकार वीणावादन कौशल से बढ़कर इसके अर्थ का क्षेत्र विस्तार अन्य सभी प्रकार के कौशल तक हो गया है।

(2) **कुशल** शब्द का अर्थ विस्तार 'पहले कुशाओं को लाने वाला कुशल (कुशान् लाति, इति कुशलः) कहलाता था। प्राचीन काल में आध्यात्मिक वातावरण में गुरुकुलों में रहने वाले गुरु-शिष्यों के जीवन में कुशा का बड़ा महत्व प्रतिदिन और अधिक मात्रा में बिना हाथ-पैर छिलाये कुशा लाने वाले को इसलिये कुशल कहा जाने लगा होगा

जबकि आजकल जीवन में कुशा कोई नहीं लाता फिर भी किसी भी कार्य को दक्षतापूर्ण करने वाला व्यक्ति कुशल कहलाता है।

(3) **गोष्ठि** शब्द का अर्थ था, जहाँ गाये रहती हैं। वह स्थान बाद में सभी पशुओं के रहने के स्थान को गोष्ठि कहा जाने लगा।

(4) **गवेषणा** शब्द पहले गाय की की इच्छा का द्योतक था। सांयकाल गायों के वन से लौटने के समय गायों के स्वामी गांव की बाहरी सीमा पर गायों के समूह में अपनी-अपनी गाय को लेने की इच्छा से उसे खोजा करते थे, पहचानते थे— 'यह मेरी हैं।' अतः गवेषणा शब्द गाय की खोज के अर्थ में प्रचलित है। बाद में वैसे ही लगन से होने वाले सभी वस्तुओं की खोज के अर्थ में प्रचलित हो गया।

(5) **तैल** पहले तिलो के द्रव को तैल कहते थे। अब सरसों अलसी, नारियल आदि द्रव को भी तैल कहा जाता है।

(2) **अर्थ संकोच** :- यह अर्थ विस्तार से बिल्कुल विपरीत है। जहाँ अर्थ का क्षेत्र पहले की अपेक्षा संकुचित हो जाता है, वहाँ अर्थ समाहित होता है। पहले शब्द सामान्य अर्थ को कहता है। उसमें बहुत से अर्थ समाहित होते हैं किन्तु बाद में शब्द किसी एक विशिष्ट अर्थ में ही संकुचित हो जाता है।

(1) **मृग** शब्द अर्थ प्राचीन संस्कृत में 'सामान्य रूप से सभी जंगली पशुओं के लिए आता था। बाद में यह शब्द संकुचित होकर केवल हिरण के लिए प्रयुक्त होने लगा।

(2) **सर्प**— 'सर्प' धातु से निस्पभ सर्प शब्द पहले सभी रेंगने वाले के लिए प्रयुक्त होता था किन्तु अब वह रेंगने वाले कीड़े साँप के लिए प्रयुक्त होता है।

(3) **वृक**—अर्थात् फाड़ने वाला। कोई भी पशु या मनुष्य अपनी फाड़ने वाली प्रवृत्ति के कारण प्राचीन काल में वृक कहलाता था किन्तु बाद में यह शब्द केवल भेड़िया अर्थ में ही संकुचित हो गया।

(4) **वृषभ**—का अर्थ था 'सृजन-शक्ति वाला' या 'उत्पादक वैदिककाल में इसका प्रयोग बादल, साँड, इन्द्र (वर्षा का देवता होने के कारण) के लिए होता था बाद में, केवल साँड के लिए ही प्रयुक्त होता गया।

(5) **आदित्य**—अदिति के सभी पुत्र, विशेषरूप से मित्र, वरुण, अर्यमादक्ष आदि वैदिक साहित्य में आदित्य कहें गए, किन्तु बाद में यह शब्द सूर्य के लिए प्रयोग में लाया गया।

(6) **धुहित**—शब्द सामान्य रूप से गाय आदि दुहने वाले किसी भी व्यक्ति के लिये प्रयुक्त हो सकता था। बाद में केवल पुत्री अर्थ में आया।

(3) **अर्थादेश** :- जब कोई शब्द अपने पहले से प्रचलित अर्थ को छोड़कर सर्वथा नवीन अर्थ की प्रतीति कराने लगता है, तब अर्थादेश होता है। अर्थादेश में अर्थ का क्षेत्र बदल जाता है। शब्द, पहले अर्थ के स्थान पर नये अर्थ को कहने लगता है,

असुर—शब्द का अर्थ ऋग्वेद की प्राचीन ऋचाओं में देवता हैं, किन्तु बाद में यह देवता स्थान पर राक्षस अर्थ का द्योतक हो गया। आजकल असुर से राक्षस अर्थ ही लिया जाता है।

उष्ट्र—शब्द का अर्थ भी ऋग्वेद की प्राचीन ऋचाओं में भैंसा है, किन्तु बाद में इसका व्यवहार ऊंट के लिये किया जाने लगा।

मौन-शब्द का पहले अर्थ था 'मुनि संबंधी आचरण' किन्तु बाद में यह केवल चुप रहने की दशा के लिए व्यवहृत होने लगा।

धूर्त-ऋग्वेद की ऋचाओं में धूर्त शब्द का अर्थ है जुआरी रामायण में भी यह इसी अर्थ में मिलता है, किन्तु बाद में इसका अर्थ हो गया छल कपट का व्यवहार करने वाला व्यक्ति।

(4) **अर्थोत्कर्ष** :- जब पहले कोई शब्द किसी बुरे (निकृष्ट या उत्कृष्ट) अर्थ को कहने लगता है तब अर्थ का विकास अर्थोत्कर्ष की दिशा में हुआ माना जाता है।

(1) साहस-इस शब्द का अर्थ सबसे अच्छा उदाहरण है। संस्कृत में पहले साहस शब्द का अर्थ था-लूट, डाका, हत्या, परस्त्रीगमन आदि।

मनुष्यमारणं चौर्यं परदारभिमर्शनम्

पारुष्यमुभय चेति साहस स्याच्चतुर्विधम्

बाद में संस्कृत में ही ही साहस शब्द जीवट या हिम्मत के अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होने लगा।

(2) मुग्ध-शब्द भी पहले मूर्ख के अर्थ में प्रचलित था किन्तु आजकल प्रत्येक व्यक्ति सौन्दर्य पर मुग्ध होना चाहता है। मुग्धा नायिका अपने भोलेपन से सभी को आकर्षित कर लेती है।

(3) कर्पट-संस्कृत में कर्पट का अर्थ था फटा पुराना जीर्ण वस्त्र। किन्तु आजकल नये से नये कपड़े को खरीदने के लिए लोग बहुत सा धन व्यय करते हैं। अतः आजकल कपड़े का वही अर्थ नहीं जो कर्पट का था।

(5) **अर्थोपकर्ष** :- अर्थोपकर्ष के विपरीत अर्थाविकास की दिशा को अर्थापकर्ष कहते हैं। अर्थात् अब पहले कोई शब्द अच्छे अर्थ में, प्रयुक्त होता है, किन्तु बाद में बुरे (अपकृष्ट अर्थ) को कहने अगता है, तब उसके अर्थ का अपकर्ष हो जाता है-

(1) असुर-जैसा पहले अर्थादेश में बतलाया गया है असुर शब्द देवता के लिए प्रयुक्त होता था किन्तु बाद में यह राक्षस अर्थ में प्रयुक्त होने लगा।

(2) अभियुक्त-पहले संस्कृत में अभियुक्त शब्द का अर्थ था प्रामाणिक पुरुष किन्तु आजकल अपराधी को अभियुक्त कहा जाता है।

उपर्युक्त विचार करने से अर्थ परिवर्तन की 5 दिशाएँ मानना ही उपर्युक्त प्रतीत होता है। अर्थ परिवर्तन की शेष दिशाओं का अन्तर्भाव इसी में हो जाता है।